संस्कृत प्रचार पुस्तकमाला सं० ६०

बालकथा-माला

संस्कृत के प्रारम्भिक छात्रों के लिए अत्यन्त सरल एवं सन्धिहीन संस्कृत में लिखी गई कतिपय शिक्षाप्रद कथाओं एवं जीवनियों का हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन

लेखक

वासुदेव द्विवेदी शास्त्री



सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थानम्

वाराणसी

सौम्यभाव एवं सादगी के प्रतिमूर्ति,

प्रति ष्ठुत शिक्षाप्रेमी एवं समाजसेवी

पण्डित श्री अच्युतानन्द दीक्षित

ग्राम-कोरया दीक्षित, पोस्ट-जगतौली

जिला-गोपालगंज (विहार)

की

सहायता से प्रकाशित



संक्षिप्त जीवन वृत्त

कीर्तिर्यस्य स जीवति



पण्डित श्री अच्युतानन्द दीक्षित

जन्म—बिहारके गोपालगंज जिलान्तर्गत भोरे थानेके कोरया दीक्षित नामक ग्रामके एक प्रतिष्ठित परिवारमें २० अगस्त, सन् १९३४ ई० को जन्म [illegible]

शिक्षा—प्रारम्भिक हिन्दी शिक्षाके बाद विद्याधर्म प्रचारक संस्कृत महाविद्यालय ग्रा० पो०- भवानी छापर जि० देवरिया तथा संस्कृत विद्यालय, कोइलादेवा मठ, जि० गोपालगंजमें संस्कृतका अध्ययन तथा उत्तर प्रदेशसे आचार्य उपाधिकी प्राप्ति।

गुरुजन तथा मार्गदर्शक—आचार्य पं० वासुदेव द्विवेदी शास्त्री, पं० विश्वनाथ द्विवेदी ज्योतिषाचार्य, आचार्य पं० सत्यनारायण शर्मा, पं० नागेश्वरमणि त्रिपाठी तथा पं० सहदेव मिश्र।

प्रशिक्षण—शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, बँगरा, जि० गोपलगंजके शिक्षकप्रशिक्षण वर्गमें भाग ग्रहण।

अध्यापन—राजकीय माध्यमिक विद्यालय लामी चौर, पो० भोरे, जि० गोपालगंजमें १-४-५८ ई० से संस्कृत अध्यापक पद पर नियुक्ति।

अध्ययनकाल के सहायक—सजावल श्री रघुनाथ लालजी, श्री रामनारायण लालजी तथा श्री ब्रजनारायण लालजी (तीनों भाई जगतौली निवासी) बाबू लालजी सिंहजी (जगतौली निवासी)।

शिक्षा प्रचार में योगदान—सन् १९४७ ई० में कोरया दीक्षित में एक विद्यालय की स्थापना। सन् १९६० ई० में उक्त गाँव में ही अरुणोदय पुस्तकालय की स्थापना। सन् १९६२ ई० में जि० गोपालगंज के पुस्तकालय संयोजक निर्वाचित। सन् १९८० ई० में जि० गोपालगंज पुस्तकालय संघ के महामन्त्री निर्वाचित। बिहार राज्य पुस्तकालय संघ के आजीवन सदस्य निर्वाचित। सन् १९८७ ई० में विद्याधर्म प्रचारक संस्कृत महाविद्यालय भवानी छापर, देवरिया की कार्यकारिणी के अध्यक्ष तथा प्रबन्धक निर्वाचित तथा दोनों पदोंपर इस समय तक कार्यरत।

समाज सेवा—परम्परागत पाण्डित्य, पौरोहित्य, एवं धर्म-प्रचार द्वारा समय-समय पर समाजकी सेवा। कोरया दीक्षित गाँव में सन् १९८० ई० में शिवमन्दिर का निर्माण तथा अखिलेश्वरनाथ महादेव की स्थापना। सन् १९८० के चुनाव में घोठा पंचायत के उप सरपंच निर्वाचित।

यात्रा—सन् १९८० ई० में चारों धाम की यात्रा।

वर्तमान स्थिति—वर्तमानमें घरपर ही रहकर क्षेत्रमें संस्कृत प्रचार, समाज सेवा तथा ईश्वराराधना।



संस्कृत प्रचार पुस्तकमाला सं० ६०

बालकथा-माला

संस्कृतके प्रारम्भिक छात्रोंके लिये अत्यन्त सरल एवं सन्धिहीन संस्कृत में लिखी गईं कतिपय शिक्षाप्रद कथाओं एवं जीवनियोंका हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन

लेखक :

वासुदेव द्विवेदी शास्त्री

सम्पादक : संस्कृत प्रचार पुस्तक माला

सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थानम्

वाराणसी

प्रकाशक :

सार्वभौम संस्कृत प्रचार संस्थानम्

डी० ३८/११० हौज कटोरा

वाराणसी-२२१००१

दूरभाष : ३५३०१२



आवृत्ति : **प्रथम**

संख्या : **एक हजार**

मूल्य : **बारह रुपये**



मुद्रक :

आनन्द कानन प्रेस

डी० १४/६५, टेढ़ीनीम

वाराणसी-२२१००१

दूरभाष : ३२२३३७

आवश्यक निवेदन

पुस्तकके सम्बन्धमें—

१—प्रस्तुत पुस्तकमें, इसके नामानुसार ही कुछ प्राचीन तथा आधुनिक कथायें एवं जीवनियाँ प्रकाशित की जा रही हैं, जो विशेष शिक्षाप्रद हैं।

२—सभी कथायें तथा जीवनियाँ अत्यन्त सरल संस्कृतमें लिखी गई हैं तथा कहीं भी कठिन एवं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है।

३—बालकोंके व्याकरणसम्बन्धी अल्पज्ञानको ध्यानमें रखकर किसी भी वाक्यमें दो पदोंके बीच सन्धि नहीं की गई है।

४—वायें पृष्ठ पर संस्कृत लिखकर दाहिने पृष्ठ पर उसका हिन्दी अनुवाद कर दिया गया है और संस्कृतके प्रत्येक पदका इस प्रकार अनुवाद किया गया है जिससे छात्रोंको कोई भ्रम न हो।

५—इस प्रकारका अनुवाद करनेसे छात्रोंको संस्कृतसे हिन्दी तथा हिन्दी से संस्कृत पढ़नेमें संस्कृतके शब्दरूपोंके कारक, विभक्ति एवं वचन आदिका तथा धातुरूपोंके काल आदिका साधारण ज्ञान हो जाता है।

६—इस पुस्तकका उद्देश्य कथाओं एवं जीवनियों द्वारा छात्रोंमें उत्तम विचारों तथा उत्तम चरित्रका निर्माण करना तो है ही परन्तु मुख्य उद्देश्य संस्कृत भाषाका ज्ञान कराना है। अतएव कथाओंके स्वरूप पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

७—इस पुस्तकके वाक्योंमें कर्मवाच्य तथा भाववाच्यका अत्यल्प प्रयोग किया गया है। क्योंकि उनका हिन्दी अनुवाद कहीं-कहीं जटिल, अव्यवहारिक तथा असम्भव हो जाता है।

पुस्तक पढ़नेकी विधिके सम्बन्धमें—

१—इस पुस्तकका पढ़ना आरम्भ करनेके पहले छात्रोंको संस्थानम् द्वारा प्रकाशित सुगम शब्दरूपावलि तथा सुगम धातुरूपावलिका अच्छी तरह आद्योपान्त अध्ययन कर लेना चाहिये।

२—इस पुस्तकके प्रत्येक सुबन्त पदको पढ़ते समय उसके मूल अजन्त और हलन्त शब्द, उसके लिङ्गभेद, उसके विशेष-विशेषण भेद, तथा उस रूपके कारक, विभक्ति एवं वचनका अच्छी तरह ज्ञान करते चलना चाहिये।

३—तिङन्त रूपोंको पढ़ते समय उनके मूल धातु, उनके गण, धातुओंके परस्मैपदी, आत्मनेपदी, उभयपदी; सकर्मक, अकर्मक, द्विकर्मक तथा सेट्, अनिट्, वेट् आदि भेदों तथा रूपोंके काल एवं लकार तथा पुरुष एवं वचन आदिका भी अच्छी तरह ज्ञान हो जाना चाहिये।

४—इसी प्रकार कृदन्त रूपोंको पढ़ते समय उनके मूल धातु तथा उनमें लगने वाले कृत्य एवं कृत् प्रत्ययोंका तथा उनसे बने पदोंके विशेष्य-विशेषणभेद, वाच्यभेद तथा लिङ्गभेद एवं अर्थका भी ज्ञान हो जाना चाहिये। इस प्रकारका आरम्भिक ज्ञान प्राप्त करनेकी दृष्टिसे पूर्वोक्त शब्दरूपावलि तथा धातुरूपावलि बहुत सहायक हो सकती है।

५—इस पुस्तकके संस्कृत भागमें कुछ ऐसे भी सुबन्त, तिङन्त एवं कृदन्त पद दिये गये हैं जो कुछ कठिन या अपरिचित मालूम हो सकते हैं। पर ऐसे पदोंको पहचानके लिये मोटे अक्षरोंमें छापा गया है।अतः छात्रोंको चाहिये कि वे उन पदोंका गुरुजनोंकी सहायतासे विशेष रूपसे ज्ञान प्राप्त कर लें।

प्रकाशनार्थ सहायताके सम्बन्धमें—

यह पुस्तक पिछले कुछ महीनोंसे लिखकर रखी हुई थी पर आर्थिक सहायताके अभावमें इसका प्रकाशन अबतक अवरुद्ध था। परन्तु यह अत्यन्त प्रसन्नताकी बात है कि हमारे ही क्षेत्रके निवासी और हमारे परम प्रिय शिष्य श्री पं० अच्युतानन्द दीक्षितजीने अपेक्षित सहायता देकर इसे प्रकाशित करनेका सुअवसर प्रदान किया तथा इस परिश्रमको सफल बनाया। एतदर्थ हम उनके अत्यन्त आभारी हैं तथा उनके दीर्घायुष्य एवं सुस्वास्थ्यके लिये हमारी अनेकानेक हार्दिक शुभकामनायें हैं। मुझे आशा है कि ये क्षेत्रके अन्य प्रतिष्ठित सज्जनोंसे भी सहायता संग्रह कर अनेक पुस्तकोंके प्रकाशनमें हमारा सहयोग करेंगे तथा अनन्त पुण्य और यशके भागी बनेंगे।

१५-५-१९९७ ई०

—वासुदेव द्विवेदी शास्त्री

विषय सूची



वाक्यगत पदों के परिचय का एक उदाहरण

वाक्य पुरा सत्ययुगे एकः उत्तानपादनामकः राजा बभूव। तस्य द्वे भार्ये आस्ताम्।

पद-परिचय

१—**पुरा**—कालवाचक अव्यय। अर्थ—पहले, पुराने समयमें।

२—**सत्ययुगे**—संज्ञावाचक अकारान्त सत्ययुग शब्द। नपुंसक लिङ्ग। अधिकरण कारक। सप्तमी विभक्ति। एकवचन। अर्थ-सत्ययुगमें।

३—**एकः**—अकारान्त संख्यावाचक विशेषण शब्द एक। विशेष्यपद राजाके अनुसार पुंलिङ्ग। कर्ता कारक। प्रथमा विभक्ति। एकवचन। अर्थ—उत्तानपाद नामका।

४—**उत्तानपादनामकः**—अकारान्त विशेषण शब्द उत्तानपादनामक। विशेष्यपद पद राजाके अनुसार पुंलिङ्ग। कर्ता कारक। प्रथमा विभक्ति। एकवचन। अर्थ—उत्तानपाद नामका।

५—**राजा**—नकारान्त पुंलिङ्ग संज्ञा शब्द राजन्। कर्त्ता कारक। प्रथमा विभक्ति। एकवचन। अर्थ-राजा।

६—**बभूव**—भ्वादिगणी, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट् भू-धातु। अनद्यतन परोक्ष भूतकाल। लिट् लकार। प्रथम पुरुष, एकवचन। अर्थ-हुआ,

७—**तस्य**—सम्बन्धवाचक सर्वनाम विशेषण, तकारान्त तत् शब्द। राजा का विशेषण होने के कारण सम्बन्ध कारक। षष्ठी विभक्ति। एक वचन। अर्थ—उसका।

८—**द्वे**—संख्यावचक विशेषण इकारान्त द्वि शब्द। विशेष्य पद भार्ये का विशेषण होने के कारण स्त्रीलिङ्ग रूप। कर्ता कारक। प्रथमा विभक्ति। द्विवचन। अर्थ—दो।

९—**भार्ये**—संज्ञावाचक आकारान्त स्त्रीलिङ्ग भार्या शब्द। कर्ता कारक। प्रथमा विभक्ति। द्विवचन। अर्थ-(दो)स्त्रियाँ।

१०—**आस्ताम्**—अदादिगणी, परस्मैपदी, अकर्मक, सेट् अस् धातु। अनद्यतन भूत। लङ् लकार। प्रथम पुरुष। द्विवचन। अर्थ थीं।

✻

॥ वाग्देवतायै नमः॥

बालकथा माला

श्रीरामवन्दना

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥

श्रीकृष्णवन्दना

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत-क्लेश-नाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

श्रीवाल्मीकिवन्दना

कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम्॥

श्रीव्यासवन्दना

व्यासं वसिष्ठ-नप्तारं शक्तेः पुत्रमकल्मषम्।
पराशरात्मजं वन्दे शुक-तातं तपोनिधिम्॥

श्रेष्ठजनवन्दना

मुनीन् महर्षीन् राजर्षीन् आचार्यान् कविपुङ्गवान्।
विश्वकल्याण-संलग्नान् वन्दे सर्वान् नरोत्तमान्॥

*

दृढसंकल्पः ध्रुवः

पुरा सत्ययुगे एकः उत्तानपादनामकः राजा बभूव। तस्य द्वे भार्ये आस्ताम्। एका सुनीतिः अपरा सुरुचिः। अनयोः मध्ये यथा सुरुचिः राज्ञः प्रियतमा आसीत् तथा सुनीतिः न आसीत्। सुरुचेः पुत्रः आसीत् "उत्तमः"। सुनीतेः पुत्रः आसीत् "ध्रुवः"।

एकदा उत्तमः निजपितुः उत्तानपादस्य क्रोडे खेलति स्म। तं तथा खेलन्तं दृष्ट्वा ध्रुवः अपि तथैव पितुः क्रोडे खेलितुम् ऐच्छत्। स धावित्वा पितुः क्रोडम् आरुरोह। परन्तु इदं दृष्ट्वा सुरुचिः अतीव कुपिता बभूव। सा ध्रुवं राज्ञः क्रोडात् अपसारयन्ती उवाच—वत्स! दूरम् अपसर। नहि त्वं राज्ञः अङ्के स्थातुं योग्यः असि। मम एव पुत्रः राज्ञः अङ्के उपवेष्टुं योग्यः अस्ति, न अन्यः।

तस्याः इदं निष्ठुरं वचनं श्रुत्वा ध्रुवः अत्यन्तं दुःखितः भूत्वा मातुः समीपे जगाम तथा इमां वार्तां मातरं निवेदयामास। तदा सुनीतिः पुत्रस्य अनादरं श्रुत्वा दुःखिता सती ध्रुवम् एवम् उवाच—

दृढ़संकल्प ध्रुव

पहले सत्ययुगमें एक उत्तानपाद नामके राजा हुए। उनकी दो स्त्रियाँ थीं। एक सुनीति, दूसरी सुरुचि। इन दोनोंमें जिस प्रकार सुरुचि राजाको प्रियतम थी उस प्रकार सुनीति नहीं थी। सुरुचिका पुत्र था "उत्तम"। सुनीतिका पुत्र था "ध्रुव"।

एक समय उत्तम अपने पिता उत्तानपादकी गोदमें खेल रहा था। उसको उस प्रकार खेलते हुए देखकर ध्रुवने भी उसी प्रकार पिताकी गोदमें खेलना चाहा। वह दौड़कर पिताकी गोदमें बैठ गया। परन्तु यह देखकर सुरुचि बहुत कुपित हो गई। वह ध्रुवको राजाकी गोदसे हटाती हुई बोली—पुत्र! दूर हटो। तुम राजाकी गोदमें बैठने योग्य नहीं हो। मेरा ही पुत्र राजाकी गोदमें बैठने योग्य है, दूसरा नहीं।

उसके इस निष्ठुर वचनको सुनकर ध्रुव अत्यन्त दुःखित होकर माताके पास गया और इस बातको मातासे बतलाया। तब सुनीति पुत्रका अनादर सुनकर दुःखित हो ध्रुवसे इस प्रकार बोली—

वत्स! अहम् एव मन्दभाग्या अस्मि। अतः एव त्वम् अपि दुःखं प्राप्नोषि। अतः त्वं यदि स्वदुःखं दूरीकर्तुं वाञ्छसि तर्हि भगवतः नारायणस्य आराधनां कुरु। सःएव सर्वेषां दुःखं विनाशयति। अतः सःएव तव अपि दुःखं दूरीकरिष्यति। तेन तम् एव आराधयस्व, तम् एव सेवस्व तथा तम् एव भजस्व।

अथ ध्रुवः मातुः उपदेशं श्रुत्वा तत्कालमेव विष्णोः आराधनाय वनं प्रति प्रस्थानम् अकरोत्। वनं गच्छतः तस्य मार्गे महर्षिः नारदः मिलितः। नारदः ध्रुवं वनगमनात् पुनः पुनः निवारयामास। "वत्स! बालकः असि, सुकुमारं शरीरम् अस्ति। वने च भयङ्कराः जन्तवः विचरन्ति। अतः मम वचनं मन्यस्व, निवर्तस्व पुनर्भवनम्, मा वनं याहि" इति वारं-वारं बोधयामास। परन्तु ध्रुवः निज-निश्चयात् विचलितः न बभूव। तदा नारदः तस्य दृढ-निश्चयं दृष्ट्वा अकथयत्— वत्स! यदि त्वं वनम् एव गन्तुं निश्चयं कृतवान् असि तर्हि गच्छ। तत्र च गत्वा "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इति मन्त्रस्य जपं कुरु। तेन तव सर्वेषां मनोरथानां पूर्तिः भविष्यति।

ध्रुवः नारदस्य दर्शनेन उपदेशेन च प्रसन्नः भूत्वा वनं जगाम, तत्र च कठोरं तपः प्रारब्धवान्। स शैत्यं वा आतपं वा, सुखं वा दुःखं वा, दिनं वा रात्रिं वा किमपि अगणयन् कठोरं तपः अकरोत्। ततः तस्य अपूर्वेण तपसा, अनन्यया च भक्त्या प्रसन्नः भूत्वा

पुत्र! मैं ही मन्दभागिनी हूँ। इसीलिए तुम भी दुःख पा रहे हो। अतः तुम यदि अपना दुःख दूर करना चाहते हो तो भगवान नारायणकी आराधना करो। वह ही सभीका दुःख मिटाता है। इसलिए वह ही तुम्हारा भी दुःख दूर करेगा। इसलिये उसीकी आराधना करो, उसीकी सेवा करो तथा उसीका भजन करो।

इसके बाद ध्रुवने माताका उपदेश सुनकर उसी समय विष्णुकी आराधनाके लिए वनकी ओर प्रस्थान किया। वन जाते हुए उसको रास्तेमें महर्षि नारद मिले। नारदने ध्रुवको वन जानेसे बार-बार रोका। "पुत्र!" तुम बालक हो, सुकुमार शरीर है। और वनमें भयानक जानवर घूमते रहते हैं। इसलिए मेरी बात मानो, लौट जाओ अपने घर, वन मत जाओ। इस प्रकार बार-बार समझाया। परन्तु ध्रुव अपने निश्चयसे विचलित नहीं हुआ। तब नारदजीने उसके दृढ़-निश्चयको देखकर कहा—पुत्र! यदि तुम वनमें ही जानेका निश्चय किए हो तो जाओ और वहाँ जाकर "ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" इस मन्त्रका जप करो। इससे तुम्हारे सभी मनोरथोंकी पूर्ति हो जायेगी।

ध्रुव नारदजीके दर्शन और उपदेशसे प्रसन्न होकर वन गया और वहाँ कठोर तप करना प्रारम्भ किया। उसने ठण्ढ़ी, गर्मी, सुख-दुःख, दिन और रात किसीकी भी परवाह न करते हुए कठोर तप किया। उसके बाद उसके अपूर्व तपसे और अनन्य भक्तिसे प्रसन्न होकर

भक्तवत्सलः भगवान् नारायणः तत्र प्रकटः बभूव। तस्मै दर्शनं च दत्वा—

वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यपुत्रक!
तत् प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत॥

इति कथयन् ध्रुवाय सर्वोत्तमं स्थानं प्रददौ तथा तं वरं लब्ध्वा ध्रुवः प्रीतमनाः भूत्वा गृहं प्रति परावर्तत।

इतः ध्रुवस्य वनगमनात् राजा उत्तानपादः सर्वदा उदासीनः तथा शोकाकुलः तिष्ठति स्म। अनेन कारणेन स सुरुचेः अपि विरक्तमनाः बभूव। अनन्तरं च कथमपि गृहे शान्तिम् अलभमानः स ध्रुवस्य अन्वेषणाय वनं गन्तुं निश्चयं चकार। ततः समाप्ते तपसि स्वयमेव आयान्तं ध्रुवं दृष्ट्वा राजा हर्षेण गद्गदः भूत्वा उवाच—वत्स! अद्य आरभ्य त्वम् एव मम प्रियः पुत्रः असि। त्वम् एव च इतः परं राज्यस्य अधिपतिः स्थास्यसि। एवं कथयन् राजा उत्तानपादः ध्रुवं नगरे आनिनाय तथा तं राजपदे अभिषिक्तं चकार।

ततः परं ध्रुवः बहून् वर्षान् राज्यं कृत्वा अन्तिमे वयसि ध्रुवं पदं प्राप।



भक्तवत्सल भगवान नारायण वहाँ प्रकट हुए। और उसको दर्शन देकर—

[हे राजपुत्र—जिस वस्तुको तुम हृदयसे चाहते हो उसको मैंने समझ लिया, इसलिए वह वस्तु, यद्यपि दुर्लभ है, फिर भी मैं तुम्हें उसे दे रहा हूँ।]

ऐसा कहते हुए भगवानने ध्रुवको सबसे उत्तम स्थान दिया और उस वरको पाकर ध्रुव प्रसन्नचित्त हो घर लौटा।

इधर ध्रुवके वन जानेसे राजा उत्तानपाद हमेशा उदासीन तथा शोकाकुल रह रहे थे। इस कारणसे वे सुरुचिसे भी विरक्त हो गए थे। और इसके बाद घरमें किसी भी प्रकार शान्ति न पाकर उन्होंने ध्रुवको खोजनेके लिए बन जानेका निश्चय किया। उसके बाद तप समाप्त हो जाने पर स्वयमेव ध्रुवको आते हुए देखकर राजा हर्षके साथ गद्गद होकर बोले—पुत्र! आजसे तुम्हीं मेरे प्रिय पुत्र हो और तुम्हीं इसके बाद राज्यके अधिपति रहोगे। इस प्रकार कहते हुए राजा उत्तानपाद ध्रुवको नगरमें लाए और उसे राजाके पद पर अभिषिक्त किया।

उसके बाद ध्रुवने अनेक वर्ष राज्य करके अन्तिम अवस्थामें ध्रुव पदको प्राप्त किया।



भक्तराजः प्रह्लादः

हिरण्याक्षः हिरण्यकशिपुः च द्वौ भ्रातरौ आस्ताम्। तयोः मध्ये एकदा हिरण्याक्षः विष्णुना मारितः। अनेन कारणेन हिरण्यकशिपुः भगवतः नारायणस्य महान् वैरी संजातः। स भगवतः वैरशोधनाय प्रजापतेः ब्रह्मणः आराधनां चकार। भगवान् प्रजापतिः तस्य तपसा भक्त्या च प्रसन्नः भूत्वा तस्मै दर्शनं दत्तवान्। ततः हिरण्यकशिपुः ब्रह्माणम् एवं वरम् अयाचत—

नान्तर्बहिर्दिवा नक्तं अन्यस्मादपि चायुधैः।
न भूमौ नाऽम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि॥

ब्रह्मा अपि तथैव अस्तु इति उक्त्वा तस्मै तं वरं प्रददौ। ततः हिरण्यकशिपुः ब्रह्मणः वरं लब्ध्वा गर्वितः सन् तस्मात् एव दिनात् देवान् ऋषीन् मनुष्यान् च पीडयितुं प्रारभत।

हिरण्यकशिपोः प्रह्लादनामा एकः पुत्रः आसीत्। स विष्णोः महान् भक्तः आसीत्। स सर्वदा विष्णोः एव नाम जपति स्म, तस्य एव कीर्तनं करोति स्म, तस्य एव गुणान् गायति स्म, तस्य एव भजनं करोति स्म, तथा तस्य एव निरन्तरं चिन्तनं करोति स्म। इदं दृष्ट्वा

भक्तराज प्रह्लाद

हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु दो भाई थे। उन दोनोंमें एकबार हिरण्याक्ष विष्णुके द्वारा मारा गया। इस कारण हिरण्यकशिपु भगवान नारायणका महान वैरी बन गया। उसने भगवानसे बदला लेनेके लिए प्रजापति ब्रह्माकी आराधना की। भगवान प्रजापतिने उसके तप और भक्तिसे प्रसन्न होकर उसको दर्शन दिया। तब हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीसे इस प्रकार वर माँगा—

[हे भगवान्, मुझे ऐसा वर दीजिए जिससे कि मेरी मृत्यु न अन्दर हो, न बाहर हो, न दिनमें हो, न रातमें हो और न किसी अन्य अस्त्र-शस्त्रसे हो तथा न भूमि पर हो, न आकाशमें हो, न किसी मनुष्यसे हो एवं न किसी जानवरसे हो।]

ब्रह्माजीने भी "वैसा ही हो" कहकर उसको वह वर दे दिया। उसके बाद हिण्यकशिपुने ब्रह्माजीसे वर पाकर, गर्वित हो उसी दिनसे देवताओं, ऋषियों और मनुष्योंको कष्ट देना प्रारम्भ कर दिया।

हिरण्यकशिपुको प्रह्लाद नामका एक लड़का था। वह विष्णुका बड़ा भक्त था। वह सदा विष्णुका ही नाम जपता था, उन्हींका कीर्तन करता था, उन्हींका गुण गाता था, उन्हींका भजन करता था और उन्हींका निरन्तर चिन्तन करता रहता था। यह देखकर

हिरण्यकशिपुः अत्यन्तं कुपितः बभूव। स प्रह्लादं बहुवारं बोधयामास यत् विष्णुः मम महान् शत्रुः अस्ति। तस्मिन् त्वया प्रीतिः न कर्तव्या। परं प्रह्लादः कदापि विष्णुभक्तिं न त्यक्तवान्। ततः हिरण्यकशिपुः तं पाठशालायां पठनाय प्रेषयामास। परं तत्र अपि प्रह्लादः भगवतः नामकीर्तनं कदापि न विस्मरति स्म। अपि तु अन्यैः अपि बालकैः कीर्तनं कारयति स्म। हिरण्यकशिपोः आज्ञया तस्य गुरुः अपि अनेकवारं प्रह्लादं निवारयामास परं तथापि प्रह्लादः विष्णोः भक्त्याः विरतः न अभूत्।

इदं श्रुत्वा हिरण्यकशिपुः अत्यन्तं दुःखितः बभूव। स विचारितवान्—यदि बहुवारं निवार्यमाणः अपि प्रह्लादः स्वकीयं दुरभ्यासं न त्यजति तर्हि एतादृशस्य शत्रुभक्तस्य बालकस्य मरणमेव वरं वर्तते। एवं निश्चयं कृत्वा स भृत्यान् आदिशत्—नयत एनं, तथा पर्वतशिखरात् भूमौ पातयत इति। भृत्यैः तथा एव अनुष्ठितम्। परन्तु भगवद्भक्तेः प्रभावात् प्रह्लादस्य अणीयसी अपि हानिः न अभूत्। ततः हिरण्यकशिपुः तप्तस्य तैलस्य कटाहे प्रह्लादं पातयितुं भृत्यान् आदिदेश। भृत्याः पुनः अपि तथा एव कृतवन्तः। परन्तु प्रह्लादः यदा तैलस्य कटाहे पातितः तदा तस्य अङ्गसम्पर्कात् तैलम् अपि शीतलं जातम्। प्रह्लादः च कटाहे एव उपविष्टः नारायण नारायण इति कीर्तनं कर्तुं प्रारब्धवान्।

हिरण्यकशिपु बहुत कुपित हुआ। उसने प्रह्लादको बहुत बार समझाया कि विष्णु मेरा महान् शत्रु है। उसमें तुमको प्रीति नहीं करनी चाहिए। किन्तु प्रह्लादने कभी भी विष्णुकी भक्तिको नहीं छोड़ा। तब हिरण्यकशिपुने उसको पाठशालामें पढ़नेके लिए भेजा। परन्तु वहाँ भी प्रह्लाद भगवान्के नामका कीर्तन कभी नहीं भूलता था। प्रत्युत दूसरे लड़कोंसे भी कीर्तन कराता था। हिरण्यकशिपुकी आज्ञासे उसके गुरुने भी कई बार प्रह्लादको मना किया, फिर भी प्रह्लाद विष्णुकी भक्तिसे विरत नहीं हुआ।

यह सुनकर हिरण्यकशिपु अत्यन्त दुःखित हुआ। उसने सोचा—यदि अनेक बार मना करने पर भी प्रह्लाद अपना दुरभ्यास नहीं छोड़ता है तो ऐसे शत्रुभक्त बालकका मर जाना ही अच्छा है। ऐसा निश्चय कर उसने नौकरोंको आदेश दिया—इसको ले जाओ और पर्वतके शिखरसे जमीन पर गिरा दो। नौकरोंने वैसा ही किया। लेकिन भगवद्भक्तिके प्रभावसे प्रह्लादकी तनिक भी हानि नहीं हुई। तब हिरण्यकशिपुने खौलते हुए तेलकी कड़ाहीमें प्रह्लादको गिरानेके लिए नौकरोंको आदेश दिया। नौकरोंने फिर वैसा ही किया। किन्तु प्रह्लाद जब तेलकी कड़ाहीमें गिराया गया — उसके अङ्गके सम्पर्कसे तेल भी ठण्डा हो गया। और प्रह्लादकड़ाहीमेंही बैठकर नारायण, नारायण—ऐसा कीर्तन करने लगा।

इदं श्रुत्वा हिरण्यकशिपोः मनसि महती चिन्ता उत्पन्ना। स वारं वारं **चिन्तयामास**—केन प्रकारेण अयं हन्तव्यः? स निजां स्वसारं होलिकाम् **आहूतवान्**। आहूय च तस्यै प्रह्लादस्य सर्वं वृत्तान्तं निवेद्य कथितवान्। स्वसः! इमं प्रह्लादं त्वं निजे अङ्के **निधाय जाज्वल्यमाने** अग्नौ उपविश येन अयं ज्वलित्वा भस्मतां गच्छेत्। होलिका तथा एव कृतवती, परं तत्रापि प्रह्लादः सुरक्षितः एव अतिष्ठत्। तस्य प्रवेशात् जाज्वल्यमानः वह्निः अपि शीतलः बभूव।

ततः सर्वेषु उपायेषु निष्फलेषु क्षुब्धः भूत्वा हिरण्यकशिपुः स्वयम् एव प्रह्लादं **प्रोवाच**—

अरे रे दुष्ट बालक! कुत्र वर्तते तव नारायणः यस्य सदा कीर्तनं करोषि? प्रह्लादः अब्रवीत्—

तात! मम नारायणः तु सर्वव्यापकः अस्ति। स जले स्थले, आकाशे पाताले, अन्तः वहिः, उपरि नीचैः सर्वत्र विराजमानः वर्तते। किमपि ईदृशं स्थानं नास्ति यत्र नारायणः न स्यात्।

"यदि एवं तर्हि किम् अस्मिन् स्तम्भे अपि वर्तते? अस्ति चेत् दर्शय। अन्यथा अनेन एव खड्गेन तव शिरः कर्तयामि।"

एवं कथयित्वा हिरण्यकशिपुः स्तम्भस्य उपरि पाद-प्रहारं कृतवान्। ततः महता शब्देन सह स्तम्भात् नृसिंहरूपधारी नारायण

यह सुनकर हिरण्यकशिपुके मनमें बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गयी। वह बार-बार सोचने लगा—किस प्रकार यह मारा जाय। उसने अपनी बहन होलिकाको बुलाया और बुलाकर उसे प्रह्लादके सभी वृत्तान्तोंको बताकर कहा-बहन! इस प्रह्लादको तुम अपनी गोदमें लेकर खूब जलती हुई अग्निमें बैठ जाओ, जिससे कि यह जलकर भस्म हो जाय। होलिकाने वैसा ही किया। किन्तु वहाँ भी प्रह्लाद सुरक्षित रहा। उसके प्रवेश से खूब जलती हुई आग भी शीतल हो गयी।

तब सभी उपायोंके निष्फल हो जानेपर क्षुब्ध हृदय (से) हिरण्यकशिपु स्वयं ही प्रह्लादसे बोला—

अरे रे दुष्ट बालक! कहाँ है तुम्हारा नारायण, जिसका सदा कीर्तन करते हो? प्रह्लाद बोला—

तात! मेरे नारायण तो सर्वव्यापक हैं। वे जलमें, स्थलमें, आकाशमें पातालमें, अन्दर, बाहर, ऊपर, नीचे सब जगह विराजमान हैं। कोई ऐसा स्थान नहीं हैं जहाँ नारायण न हों।

"यदि ऐसा है तो क्या इस खम्भेमें भी हैं? हैं तो, दिखाओ! नहीं तो इसी तलवारसे तुम्हारा शिर काँटता हूँ।"

ऐसा कहकर हिरण्यकशिपुने खम्भेके ऊपर पैरसे प्रहार किया। तब महान शब्दके साथ खम्भेसे नृसिंहरूपधारी नारायण निकले और

निश्चक्राम। निष्क्रम्य च हिरण्यकशिपुं क्रोडे कृत्वा तस्य वक्षःस्थलं नखैः विदारयामास। ततो भगवतः दर्शनेन आह्लादितः प्रह्लादः तस्य बहुधा स्तुतिं चकार। नारायणः अपि तस्य अनया अपूर्वया भक्त्या प्रसन्नः भूत्वा तस्मै परमं पदं प्रादात्।



गुरुभक्तः आरुणिः

प्राचीनकाले एकः धौम्यनामा महान् ऋषिः आसीत्। तस्य आश्रमे बहवः ब्रह्मचारिणः विद्याभ्यासं कुर्वन्ति स्म। तेषु ब्रह्मचारि त्रयः ब्रह्मचारिणः विशेषेण बुद्धिमन्तः तथा गुरुभक्ताः आसन्। आरुणि उपमन्युः तथा वेदः इति तेषां नामानि आसन्।

एकदा आचार्य-धौम्यस्य क्षेत्रे सेचनाय पानीयं बाह्यते स्म तत्र कदाचित् क्षेत्रस्य एकः बन्धः भग्नः जातः। बन्धे भग्ने स जलं क्षेत्राद् बहिः गच्छति। इदं श्रुत्वा महर्षिः धौम्यः आरुणिं प्र उवाच। वत्स आरुणे! क्षेत्रे बन्धस्य भङ्गेन सर्वं जलं क्षेत्राद् ब निर्गच्छति। अतः शीघ्रं गच्छ। बन्धं बधान। जलं रुन्धि। अन्य महती हानिः भविष्यति।

निकलकर हिरण्यकशिपुको गोदमें (लेकर) करके उसकी छातीको नखोंसे फाड़ डाला। उसके बाद भगवानके दर्शनसे आह्लादित प्रह्लादने उनकी बहुत बार स्तुति की और नारायणने भी उसकी इस अपूर्व भक्तिसे प्रसन्न होकर उसको परम पद प्रदान किया।



गुरुभक्त आरुणि

प्राचीन समयमें एक धौम्य नामके महान ऋषि थे। उनके आश्रममें बहुतसे ब्रह्मचारी विद्याभ्यास करते थे। उन ब्रह्मचारियोंमें तीन ब्रह्मचारी विशेषरूपसे बुद्धिमान तथा गुरुभक्त थे। आरुणि, उपमन्यु तथा वेद उनके नाम थे।

एक बार आचार्य धौम्यके खेतमें सिंचाईके लिए पानी चलाया जा रहा था। वहाँ कभी खेतका एक बाँध टूट गया। बाँधके टूट जाने पर पूरा पानी खेतसे बाहर जा रहा है, यह सुनकर महर्षि धौम्यने आरुणिसे कहा। वत्स आरुणि! खेतमें बाँधके टूट जानेसे समूचा जल खेतसे बाहर निकल रहा है। इसलिए जल्दी जाओ। बाँध बाँधो। पानी रोको। नहीं तो बहुत बड़ी हानि हो जायगी।

आचार्यस्य आदेशं श्रुत्वा आरुणिः तत्कालम् एव क्षेत्रं गतः। बन्धस्य बन्धनाय प्रयत्नं कर्तुं प्रारेभे। बहून् उपायान् कृतवान्। परं तस्य सर्वः परिश्रमः व्यर्थः अभूत्। जलस्य वेगः अतीव तीव्रः आसीत्। अतः स एकाकी जलस्य निरोधे सफलः न बभूव।

ततः आरुणिः विचारितवान्-इदानीं किं करवाणि? जलस्य निरोधाय गुरोः आज्ञा अस्ति। ततः इदं कार्यम् अकृत्वा आश्रमं कथं गमिष्यामि? तत् अहम् एव बन्धस्थाने शयित्वा स्वकीयेनशरीरेण जलं निरुणध्मि। एवं विचार्य स तत्रैव शयितः, स्वशरीरेण च जलनिरोधं कृतवान्। अनेन उपायेन यदा तस्य इच्छा सफला बभूव तदा तस्य मानसे महान् आनन्दः अजायत।

तथापि सायङ्कालः जातः। सर्वत्र अन्धकारः व्याप्तः। परन्तु आरुणिः आश्रमं न निवृत्तः। अनेन कारणेन गुरोः धौम्यस्य मनसि महती चिन्ता अभूत्। स शिष्यान् अपृच्छत्-आरुणिः कुत्र वर्तते? ते ऊचुः। आचार्य! प्रातःकाले एव स भवता जलस्य निरोधाय क्षेत्रे प्रेषितः। तस्मात् कालात् तं अवयम् आश्रमे न अवलोकितवन्तः। अतः तेन तत्रैव भवितव्यम्।

इदं श्रुत्वा शिष्यवत्सलः महर्षिः अतीव विकलः बभूव। स त्वरितम् एव आरुणेः अन्वेषणाय शिष्यैः सह क्षेत्रं प्रति प्रस्थितः

आचार्यका आदेश सुनकर आरुणि उसी समय खेत पर चला गया। बाँधको बाँधनेके लिए प्रयत्न करना शुरु किया। बहुतसे उपाय किये। किन्तु उसका सब प्रयत्न व्यर्थ हो गया। पानीका वेग बहुत तेज था। इसलिए वह अकेले पानीको रोकनेमें सफल नहीं हुआ।

तब आरुणि सोचने लगा। अब क्या करुँ? कैसे बाँध बाँधू? जलके प्रवाहको कैसे रोकूँ? पानीको रोकनेके लिए गुरुकी आज्ञा है। तब यह काम किए बिना आश्रममें कैसे जाऊँगा? इसलिए मैं ही बाँध पर सोकर अपने शरीरसे पानीको रोकता हूँ। ऐसा सोचकर वह वहीं सो गया और अपने शरीरसे पानीको रोक दिया। इस उपायसे जब उसकी इच्छा सफल हो गयी तब उसके मनमें महान आनन्द हुआ।

फिर भी सन्ध्या हो गयी। चारो ओर अन्धेरा छा गया। परन्तु आरुणि आश्रम पर नहीं लौटा। इस कारण महर्षि धौम्यके मनमें महती चिन्ता हुई। उन्होंने शिष्योंसे पूछा—आरुणि कहाँ है? वे बोले। आचार्य! सुबह ही आपने उसको पानी रोकनेके लिए खेत पर भेजा। उस समयसे हम लोगोंने उसको आश्रममें नहीं देखा। इसलिए उसे वहीं होना चाहिये।

यह सुनकर शिष्यवत्सल महर्षि बहुत विकल हुए। वे तुरत आरुणिको खोजनेके लिए शिष्योंके साथ खेतकी ओर चल दिये।

परं तत्र स आरुणिं न दृष्ट्वा तम् उच्चस्वरेण आहूतवान्-आरुणे! वत्स आरुणे! कुत्र वर्तसे! किं करोषि?

आरुणिः गुरोः वचनं श्रुत्वा जगाद—गुरो! अहम् अत्रैव क्षेत्रे स्वयं बन्धः भूत्वा स्थितः अस्मि। तस्य वचनं श्रुत्वा गुरुः स्वयमेव तस्य समीपं गतः। तत्र तं क्षेत्रे तथा वर्तमानं दृष्ट्वा तस्य मनसि महत् आश्चर्यं बभूव। स तस्य इमाम् अलौकिकीं गुरुभक्तिं दृष्ट्वा अतीव प्रसन्नः जातः। स तस्य तदानीम् "उद्दालक" इति नाम चकार। अनन्तरं गुरोः आशीर्वादेन आरुणिः अल्पकालेन एव सर्वासु विद्यासु पारङ्गतः भूत्वा "उद्दालक ऋषिः" इति नाम्ना प्रसिद्धः बभूव।



मातापितृभक्तः श्रवणकुमारः

श्रवणकुमारः एकः वैश्यकुमारः आसीत्। अस्य माता-पितरौ उभौ अपि नितान्तं वृद्धौ नेत्राभ्यां च अन्धौ आस्ताम्। वृद्धावस्थायां तयोः तीर्थाटनं कर्तुं विचारः समुत्पन्नः। श्रवणकुमारः आत्मनः मातुः तथा पितुः सेवाम् एव स्वकीयं परमं कर्तव्यं मन्यते स्म। अतः स मातरं

किन्तु वहाँ उन्होंने आरुणिको न देखकर उसे ऊँचे स्वरसे बुलाया—आरुणि! वत्स आरुणि, कहाँ हो? क्या कर रहे हो?

आरुणि गुरुका वचन सुनकर बोला—गुरुजी! मैं यहीं खेतमें स्वयं बाँध बनकर लेटा हुआ हूँ। उसके वचनको सुनकर गुरुजी स्वयं उसके पास गये। वहाँ उसको खेतमें उस प्रकार पड़े हुए देखकर उनके मनमें महान आश्चर्य हुआ। वे उसकी इस अलौकिक गुरुभक्तिको देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उस समय उसका ''उद्दालक'' नाम रख दिया। उसके बाद गुरुके आशीर्वादसे आरुणि थोड़े समयमें ही सभी विद्याओंमें पारङ्गत होकर ''उद्दालक ऋषि'' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ।



मातृपितृभक्त श्रवणकुमार

श्रवणकुमार एक वैश्यकुमार था। इसके माता-पिता दोनों ही नितान्त वृद्ध और नेत्रसे अन्धे थे। बुढ़ापेमें उन दोनोंका तीर्थाटन करनेका विचार हुआ। श्रवणकुमार अपने माता-पिताकी सेवा ही अपना परम कर्तव्य मानता था। इसलिए वह माता और

पितरं च विहङ्गिकायाम् उपवेश्य तीर्थेषु भ्रमणं कारयितुं गृहात् निष्क्रान्तः तथा वनेषु पर्यटितुं प्रारेभे।

एवं स वनात् वनान्तरे भ्रमणं कुर्वन् तमसा नद्याः तीरं समागतः तत्रैव च निवासं चक्रे। संयोगवशात् तस्मिन् एव वने अयोध्यायाः राजा दशरथः एकदा आखेटकं कर्तुं समागतः। स कदाचित् आखेटकं कुर्वन् स्वसैनिकैः वियुक्तः मार्गं परित्यज्य तमसायाः तीरं सम्प्राप्तः।

इतः तस्मिन् एव समये श्रवणकुमारस्य माता-पितरौ पिपासितौ जातौ। तदा स तयोः पिपासा-शमनार्थं वारि आनेतुं तमसायाः तीरं जगाम। तत्र गत्वा स यदा जलाभ्यन्तरे प्रविष्टः जलपात्रं भर्तुं लग्नः तदा जले बुड़बुड़ बुड़बुड़ इति ध्वनिः समुत्पन्नः। तं ध्वनिं श्रुत्वा राजा दशरथः ज्ञातवान् यत् कश्चित् जन्तुः जलं पिबन् अस्ति। अतः एव ईदृशः शब्दः जायते।

राजा दशरथः शब्दवेधि-वाणविद्यायां नितान्तं निपुणः आसीत्। स तम् एव बुड़बुड़ शब्दं लक्ष्यं कृत्वा त्वरितमेव वाणं विससर्ज। परं तत्र तु न कोऽपि जन्तुः आसीत्। अतः स वाणः श्रवण-कुमारस्य एव शरीरे लग्नः तथा श्रवणः हा हा कृत्वा पृथिव्यां निपपात। तदा जन्तोः स्थाने मनुष्यस्य वाणीं श्रुत्वा दशरथस्य महत् आश्चर्यं जातम्। स त्वरितमेव धावन् नदीतटं प्राप्तः। तत्र स वाणेन

पिताको बहँगी पर बैठाकर तीर्थोंमें भ्रमण करानेके लिए घरसे निकल गया और वनोंमें पर्यटन करना प्रारम्भ किया।

इस प्रकार वह एक वनसे दूसरे वनमें घूमता हुआ तमसा नदीके तट पर आया और वहीं निवास करने लगा। संयोगवश उसी वनमें अयोध्याके राजा दशरथ एकबार शिकार करनेके लिए आए। वे शिकार करते हुए अपने सैनिकोंसे बिछुड़कर रास्तेको छोड़ तमसानदीके किनारे पहुँच गये।

इधर उसी समय श्रवणकुमारके माता-पिताको प्यास लगी। तब वह उन दोनोंकी प्यासको बुझानेके लिए पानी लानेके लिए तमसाके तटपर गया। वहाँ जाकर उसने जब पानीमें प्रवेश किया और लोटेमें पानी भरने लगा तब पानीमें बुड़बुड़, बुड़बुड़ आवाज होने लगी। उस आवाजको सुनकर राजा दशरथने समझा कि कोई जानवर पानी पी रहा है। इसीसे ऐसी आवाज हो रही है।

राजा दशरथ शब्दवेधी-बाण विद्यामें अत्यन्त निपुण थे। उन्होंने उसी बुड़बुड़ शब्दको लक्ष्य करके तुरन्त बाण छोड़ा। किन्तु वहाँ तो कोई जानवर था ही नहीं। इसलिए वह बाण श्रवणकुमारके शरीरमें लग गया और श्रवण हा हा करके पृथिवी पर गिर पड़ा। तब जानवरके स्थान पर मनुष्यकी वाणी सुनकर दशरथको महान आश्चर्य हुआ। वे तुरन्त दौड़ते हुए नदीके तट पर पहुँचे। वहाँ वे बाणसे

आहतं श्रवणं पृथिव्यां पतितं दृष्ट्वा अत्यन्तं दुःखितः बभूव। स श्रवणं उत्त्थाप्य क्रोडे च निधाय तस्य परिचयं पृष्टवान्।

श्रवणः स्वकीयं परिचयं दत्वा कथितवान्–'राजन्! मम आत्मनः मृत्योः किमपि दुःखं नास्ति। परन्तु मम माता-पितरौ वृद्धौ अन्धौ च स्तः। इदानीं च तौ पिपासितौ वर्तेते। अतः भवान् तौ जलं पाययतु। तौ पिपासया आकुलौ मम प्रतीक्षां कुर्वाणौ भवेताम्।' राजा इदं हृदयद्रावकं वचनं श्रुत्वा महत् कष्टं अनुभवन् पुनः श्रवणं पप्रच्छ। कथय वत्स! अन्यः कस्ते अभिलाषः यमहं पूरयामि। श्रवणः उवाच—मम द्वौ एव अभिलाषौ वर्तेते। एकस्तु अभिलाषः अयम् यद् भवान् मम वृद्धयोः अन्धयोः माता-पित्रोः सुखसुविधानां व्यवस्थां कुर्यात् तथा द्वितीयः अभिलाषः अयम् यत् भवान् अद्य आरम्भ कदापि वन्य-जन्तूनां हत्यां न विदध्यात्। एतावद् वचनं कथयतः श्रवणस्य गलावरोधः संजातः तथा कपिपयक्षणेषु स इहलीलां समाप्य स्वकीयान् प्राणान् असमये एव विससर्ज।

अनन्तरं राजा दशरथः कमण्डलौ जलं गृहीत्वा श्रवणस्य मातापित्रोः समीपं प्राप्तवान्। इदानीं तौ पिपासया आकुलौ श्रवणस्य नामग्राहं तं आह्वयन्तौ आस्ताम्। तदानीं कस्यापि आगमन-सङ्केतं लब्ध्वा वत्स श्रवण इति तौ अवोचताम्। परं तदानीं

घायल श्रवणको पृथिवी पर गिरा हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए। वे श्रवण को उठाकर और गोदमें लेकर उसका परिचय पूछने लगे।

श्रवणने अपना परिचय देकर कहा—'राजन्! मेरी अपनी मृत्युका कोई दुःख नहीं है। लेकिन मेरे माता-पिता वृद्ध और अन्धे हैं और इस समय वे दोनों प्यासे हैं। इसलिए आप उन दोनोंको पानी पिलाइए। वे प्याससे व्याकुल मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।' राजाने इस हृदयविदारक वचनको सुनकर महान कष्टका अनुभव करते हुए फिर श्रवणसे पूछा। कहो बालक! दूसरी कौन तुम्हारी अभिलाषा है जिसको मैं पूरा करूँ? श्रवण बोला—मेरी दो ही अभिलाषायें हैं। एक तो अभिलाषा यह कि आप मेरे वृद्ध और अन्धे माता-पिताकी सुख-सुविधाओंकी व्यवस्था करें तथा दूसरी अभिलाषा यह कि आप आज़से कभी भी वनके जानवरोंकी हत्या न करें। इतना वचन कहते हुए श्रवणकुमारका गला रुद्ध हो गया और कुछ ही क्षणोंमें उसने इहलीलाको समाप्त करके अपने प्राण असमयमें ही छोड़ दिए।

उसके बाद राजा दशरथ कमण्डलुमें पानी लेकर श्रवणके मातापिताके पास पहुँचे। उस समय प्याससे व्याकुल वे दोनों श्रवणका नाम लेकर उसको बुला रहे थे। उस समय किसीके आनेका सङ्केत पाकर "वत्स श्रवण" इस प्रकार वे दोनों बोले। लेकिन उस

श्रवणः कुत्र ? राजा शनैः तयोः समीपं गत्वा "गृह्णीताम् एतत् जलम्" इति अब्रवीत्। अयं शब्दः श्रवणस्य नास्ति इति ज्ञात्वा तौ अपृच्छ-ताम्-कोः भवान् अस्मभ्यं जलं प्रयच्छति ? राजा तदानीं नितरां लज्जितः दुःखितश्च सर्वं वृत्तान्तम् अश्रावयत्। तदानीं तयोः उपरि वज्रपातः इव सम्वृत्तः। वृद्धा अवस्था। नेत्राभ्याम् अन्धौ। वने निवासः। तत्रापि अकस्मात् वाणेन हतस्य पुत्रस्य वियोगः। ईदृशी अनर्थ-परम्परा! इदानीं कः खलु जलं गृह्णाति तथा कश्च पिबति। उभौ अपि व्याकुलौ भूत्वा उरः ताडयन्तौ विलापं चक्रतुः, ऊचतुश्च राजानम्-राजन्! तव कारणात् एव पुत्रशोकेन पीडितौ आवाम् इदानीं प्राणान् परित्यजावः। अतः त्वमपि पुत्रशोकेन प्राणान् परित्यक्ष्यसि।

तत्कालपर्यन्तं राज्ञः दशरथस्य काऽपि सन्ततिः न आसीत्। अतः तयोः शापः अपि दशरथाय वरदानम् इव संवृत्तः। तस्य चत्वारः पुत्रा अभूवन् परं शापकारणात् रामस्य वियोगेन तस्यापि पुत्रशोके एव प्राणाः गताः इति कथा प्रसिद्धा एव वर्तते।

त्रेतायुगस्य इयं कथा अस्ति अति पुरातनी। परन्तु श्रवणेन आत्मनः मातापित्रोः या अपूर्वा सेवा विहिता यथा च स तयोः सेवायाम् एव प्राणान् परित्यक्तवान् तस्य अद्यापि शत-शत-कण्ठैः सर्वत्र गानं भवति, श्रवणस्य च नाम मातापित्रोः भक्तिविषये जगति अमरं बभूव। *

समय श्रवण कहा! राजा धीरेसे उन दोनोंके पास जाकर "लीजिए यह पानी" ऐसा बोले। यह शब्द श्रवणका नहीं है ऐसा जानकर वे दोनों पूछे—कौन आप, हम दोनोंको पानी दे रहे हैं। राजाने उस समय अत्यन्त लज्जित और दु:खित होकर सब वृत्तान्त सुनाया। उस समय उन दोनोंके ऊपर वज्रपात ही पड़ गया। वृद्ध अवस्था। नेत्रसे अन्धे। वनमें निवास। वहाँ भी अकस्मात् बाणसे मरे पुत्रका वियोग। ऐसी अनर्थ परम्परा! इस समय कौन पानी लेता है और कौन पीता है। दोनों ही व्याकुल होकर छाती पीटते हुए राजासे बोले—राजन्! तुम्हारे कारण ही पुत्र-शोकसे पीड़ित हम दोनों इस समय प्राण छोड़ रहे हैं। इसलिए तुम भी पुत्र-शोकसे प्राण छोड़ोगे।"

उस समय तक राजा दशरथको कोई सन्तान नहीं थी। इसलिए उन दोनोंका श्राप भी राजा दशरथके लिए वरदान ही सिद्ध हुआ। उनके चार पुत्र हुए किन्तु शापके कारण रामके वियोगसे उनके भी पुत्र-शोकमें ही प्राण गए, यह कथा प्रसिद्ध ही है।

त्रेतायुगकी यह कथा बहुत पुरानी है। किन्तु श्रवणने अपने माता-पिताकी जो अपूर्व सेवाकी और जिस प्रकार उसने उन दोनोंकी सेवामें ही अपने प्राण छोड़े, उसका आज भी सैकड़ों कण्ठसे सब जगह गान होता है और श्रवणका नाम माता-पिताकी भक्तिके विषयमें जगतमें अमर हो गया। ✳

मर्यादापुरुषोत्तमः श्रीरामचन्द्रः

भारतीय-समाजे मर्यादा-पुरुषोत्तमस्य भगवतः श्रीराम-चन्द्रस्य नाम अतीव परिचितं वर्तते। सर्वे जनाः एनं भगवतः अवतारं मन्यन्ते। अत एव गृहे गृहे अस्य पूजा भवति, गृहे गृहे अस्य भजनं भवति। उत्तिष्ठन्तः उपविशन्तः, शयानाः जाग्रतः, श्वसन्तः जृम्भमाणाः तथा खादन्तः, पिबन्तः जनाः सर्वदा एव एतस्य स्मरणं कुर्वन्ति। चैत्रमासस्य शुक्ले पक्षे रामनवम्यां तिथौ समस्ते हिन्दुसमाजे अस्य जन्मोत्सवः महता समारोहेण भक्तिभावेन च मान्यते।

एतस्य संक्षिप्तं चरित्रं निम्नलिखितं वर्तते।

त्रेतायुगस्य कथा अस्ति। राजा दशरथः अयोध्यायां राज्यं करोति स्म। तस्य तिस्रः राज्ञ्यः आसन्। कौशल्या कैकेयी सुमित्रा च। आसां गर्भेभ्यः दशरथस्य चत्वारः पुत्राः उत्पन्नाः। रामः लक्ष्मणः भरतः तथा शत्रुघ्नः। एषु रामः कौशल्यायाः, भरतः कैकेय्याः तथा लक्ष्मण–शत्रुघ्नौ सुमित्रायाः पुत्रौ आस्ताम्।

रामः सर्वेषु भ्रातृषु ज्येष्ठः आसीत्। अयं यथा वयसा ज्येष्ठः आसीत् तथैव गुणैः अपि श्रेष्ठः आसीत्। अयं बाल्यकालात् एव धार्मिकः सुशीलः, सत्यवादी, बुद्धिमान्, वीरः, मातापितृभक्तः सर्वेषां हितैषी

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र

भारतीय समाजमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्रका नाम बहुत परिचित है। सभी लोग इनको भगवान्‌का अवतार मानते हैं। इसीलिए घर-घरमें इनकी कथा होती है, घर-घरमें इनका कीर्तन होता है और घर-घरमें इनका भजन होता है। उठते हुए,बैठते हुए, सोते हुए, जागते हुए, साँस लेते हुए, जम्हाई लेते हुए, खाते तथा पीते हुए लोग हमेशा ही इनका स्मरण करते हैं। चैत्र महीनेके शुक्लपक्षमें रामनवमीके दिन पूरे हिन्दू-समाजमें इनका जन्मोत्सव महान समारोह और भक्तिभावके साथ मनाया जाता है।

इनका संक्षिप्त चरित्र निम्नलिखित है।

त्रेतायुगकी कथा है। राजा दशरथ अयोध्यामें राज्य करते थे। उनकी तीन रानियाँ थीं। कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। इनके गर्भसे दशरथके चार पुत्र हुए। राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न। इनमें राम कौशल्याके, भरत कैकेयीके तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न सुमित्राके पुत्र थे।

राम सभी भाइयोंमें बड़े थे। ये जिस प्रकार अवस्थासे बड़े थे उसी प्रकार गुणोंसे श्रेष्ठ थे। ये बचपनसे ही धार्मिक, सुशील, सत्यवादी, बुद्धिमान, वीर, माता-पिताके भक्त और सभीके हितैषी

च आसीत्। आत्मनः कुलगुरोः महर्षेः वशिष्ठस्य सकाशात् अयं स्वल्प-कालेन एव सर्वाः विद्याः अधीतवान्। अस्त्रविद्यायां, गजा-रोहणे, अश्वारोहणे, नीतिशास्त्रे, सर्वासु कलासु च अयं महतीं निपुणतां प्राप्तवान्। एभिः कारणैः सर्वः परिवारः, सर्वे परिजनाः, सर्वे राजकर्म-चारिणः तथा सर्वाः प्रजाश्च रामस्य उपरि अतीव प्रीतिं कुर्वन्ति स्म।

एकदा ऋषिः विश्वामित्रः स्वयज्ञरक्षायै रामचन्द्रं स्वकीयं आश्रमं नीतवान्। तत्र स ताडकां तथा अन्यान् राक्षसान् हत्वा विश्वामित्रेण सह सीतायाः स्वयम्वरं द्रष्टुं जनकपुरं गतवान्। तत्र एव च राजर्षेः जनकस्य कन्यया सीतया सह तस्य विवाह-संस्कार अभूत्।

विवाहानन्तरं राजा दशरथः रामचन्द्रं सर्वगुणैः सम्पन्नं दृष्ट्वा सर्वेषां सम्मत्या तं युवराजपदे अभिषेक्तुं कामयामास। परन्तु तस्य प्रियतमा राज्ञी कैकेयी इदं न रोचयामास। एकदा राजा दशरथः तस्यै द्वौ वरौ दत्तवान् आसीत्। कैकेयी तयोः वरयोः मध्ये एकेन वरेण रामचन्द्रस्य चतुर्दश-वर्ष-पर्यन्तं वनवासं तथा द्वितीयेन वरेण स्वपुत्रस्य भरतस्य राज्याभिषेकं प्रार्थितवती।

राजा दशरथः कदापि असत्यं न वदतिस्म। अतः निजवचनस्य पालनाय अनिच्छन् अपि रामचन्द्रं वनवासं आज्ञापयामास। रामः मातुः पितुश्च महान् आज्ञाकारी आसीत्

थे। अपने कुलगुरु वसिष्ठसे इन्होंने थोड़े समयमें ही सभी विद्याओंको पढ़ लिया। अस्त्रविद्यामें, गजारोहणमें, अश्वारोहणमें, नीतिशास्त्रमें और सभी कलाओंमें इन्होंने महती निपुणता प्राप्त की। इन कारणोंसे सारा परिवार, सभी परिजन, सभी राजकर्मचारी और सभी प्रजाजन रामके ऊपर बहुत प्रीति करते थे।

एकबार ऋषि विश्वामित्र अपने यज्ञकी रक्षाके लिए रामचन्द्रजीको अपने आश्रममें ले गये। वहाँ वे ताड़का तथा अन्य राक्षसोंको मारकर विश्वामित्रके साथ सीताके स्वयंवरको देखनेके लिए जनकपुर गये। वहीं राजर्षि जनककी कन्या सीताके साथ उनका विवाह-संस्कार हुआ।

विवाहके बाद राजा दशरथने रामचन्द्रको सभी गुणोंसे सम्पन्न देखकर सभी की सम्मतिसे उनको युवराजके पद पर अभिषिक्त करना चाहा। किन्तु उनकी प्रियतमा रानी कैकेयीको यह अच्छा नहीं लगा। एकबार राजा दशरथने उनको दो वर दिये थे। कैकेयीने उन दोनों वरोंमें से एक वरसे रामचन्द्रके चौदह वर्ष तक वनवास तथा दूसरे वरसे अपने पुत्र भरतके राज्याभिषेककी माँग की।

राजा दशरथ कभी भी झूठ नहीं बोलते थे। इसलिए उन्होंने अपने वचनके पालनके लिए न चाहते हुए भी रामचन्द्रको वनवासके लिए आदेश दिया। राम माता और पिताके महान आज्ञाकारी थे।

अतः स तयोः आज्ञया त्वरितमेव राजकुमार-वेषं परित्यज्य मुनिवेषं च धारयित्वा वनं प्रति प्रस्थानं कृतवान्। वनं गच्छन्तं रामं दृष्ट्वा स्नेहकारणात् सीता लक्ष्मणश्च तम् अनुजग्मतुः। ततः रामचन्द्रः सीता-लक्ष्मणाभ्यां सह वनाद् वनं परिभ्रमन्, अनेकानि वन्यानि दृश्यानि अवलोकयन्, ऋषीणाम् आश्रमेषु निवसन्, हिंसकान् जन्तून् निघ्नन्, यज्ञे विघ्नकरान् राक्षसान् दण्डयन् तथा तपस्विजनान् पूजयन् सुखपूर्वकं वने निवसितुं प्रववृते।

इतः पुत्रस्य वियोगम् असहमानः राजा दशरथः शीघ्रमेव स्वकीयान् प्राणान् तज्याज। तस्मिन् समये भरतः आत्मनः मातुलालये आसीत्। यदा भरतः मातुलालयात् निवृत्तः तदा भ्रातरं वनवासिनं पितरं च मृतं ज्ञात्वा स अत्यन्तं शोकाकुलः संजातः। स निजमातरम् एव अस्य अनर्थस्य मूलं मत्वा तस्या उपरि अत्यन्तं क्रुद्धः बभूव तथा तस्याः मन्त्रदायिनीं मन्थरां च भृशं निजघान। तदनन्तरं स रामचन्द्रं वनात् परावर्तयितुं वनं गतवान् तथा रामचन्द्रं च बहु प्रार्थितवान् परं रामचन्द्रः पितुः आज्ञाभङ्गभयात् चतुर्दश-वर्षेभ्यः पूर्वं नगरं गन्तुं कथमपि न अङ्गीकृतवान्। स पादुकां दत्वा भरतं वनात् निवर्तयामास।

भरते निवृत्ते रामचन्द्रः विविधेषु वनेषु परिभ्रमन्

इसलिए उन्होंने उन दोनोंकी आज्ञासे तुरन्त राजकुमारके वेषको छोड़ तथा मुनिवेष पहनकर वनकी ओर प्रस्थान किया। वनमें जाते हुए रामको देखकर स्नेहवश सीता और लक्ष्मण भी उनके पीछे-पीछे गये। उसके बाद रामचन्द्र सीता और लक्ष्मणके साथ एक वनसे दूसरे वनमें घूमते हुए, अनेक वन्य दृश्योंको देखते हुए, ऋषियोंके आश्रमोंमें रहते हुए, हिंसक जन्तुओंको मारते हुए, यज्ञमें विघ्न करनेवाले राक्षसोंको दण्डित करते हुए तथा तपस्वी लोगों को पूजते हुए सुखपूर्वक वन में रहने लगे।

इधर पुत्रके वियोगको सहन नहीं करते हुए राजा दशरथने शीघ्र ही अपने प्राण छोड़ दिये। उस समय भरत अपने मामाके घर थे। जब भरत मामाके घरसे लौटे तब भाईको वनवासी तथा पिताको मरा हुआ जानकर वे अत्यन्त शोकाकुल हो गये। वे अपनी माताको ही इस अनर्थका मूल मानकर उसके ऊपर अत्यन्त क्रुद्ध हुए तथा उनको मन्त्र देनेवाली मन्थराको बहुत मारा। इसके बाद वे रामचन्द्रको वनसे लौटानेके लिए वन गये तथा रामचन्द्रसे बहुत प्रार्थना की परन्तु रामचन्द्रने पिताकी आज्ञा भङ्गके भयसे चौदह वर्षके पहले नगरमें जाना किसी भी प्रकार स्वीकार नहीं किया। उन्होंने खड़ाऊ देकर भरतको वनसे लौटा दिया।

भरतके लौट जानेपर रामचन्द्र विविधवनोंमें घूमते हुए

दण्डकारण्यं समागतः। तत्र एका शूर्पणखानाम्नी रावणस्य भगिनी तथा राक्षसानां महती सेना च निवसति स्म। एकदा शूर्पणखा आगत्य रामचन्द्रेण सह विवाहं कर्तुं प्रस्तावं कृतवती। तस्याः इमां धृष्टतां दुष्टतां च दृष्ट्वा लक्ष्मणः तस्याः नासिकां कर्णौ च चिच्छेद। अनन्तरं रामचन्द्रः लक्ष्मणेन सह तस्मिन् वने निवसतां सर्वेषां राक्षसानां वधं कृतवान्। इमं समाचारं श्रुत्वा रावणः अत्यन्तं क्रुद्धः बभूव। ततः स स्वमातुलस्य मारीचस्य सहयोगेन रामलक्ष्मणौ दूरे अतिवाह्य स्वयं च मुनिवेषं धृत्वा सीतायाः अपहरणं कृतवान्।

सीतायाः अपहरणेन दुःखितः शोकाकुलश्च रामचन्द्रः इतस्ततः सीतायाः अन्वेषणं कुर्वन् किष्किन्धानगरं प्राप। तत्र बालिं हत्वा अयं वानरराजेन सुग्रीवेण सह मैत्रीं कृतवान्। ततः सुग्रीवद्वारा प्रेषितेन हनूमता सीतायाः लङ्कायां निवासं श्रुत्वा रामचन्द्रः वानराणां सेनया सह समुद्रे सेतुं बद्ध्वा लङ्कायाः उपरि आक्रमणं कृतवान्। तत्र रावणेन सह रामचन्द्रस्य महाभयङ्करं युद्ध जातम्। युद्धे अनेके राक्षसाः वानराश्च मृत्युं गताः। लक्ष्मणः अपि एकदा मूर्च्छितः जातः। परन्तु अन्ते राक्षससेनायाः पराजयः जात तथा रामचन्द्रेण रावणः मारितः। ततः विभीषणं राज्ये अभिषिच्य सीतां च गृहीत्वा रामचन्द्रः लक्ष्मणेन सर्वैः वानरैश्च सह अयोध्याम् आजगाम।

दण्डकारण्य आए। वहाँ एक शूर्पणखा नामकी रावणकी बहन तथा राक्षसोंकी बहुत बड़ी सेना रहती थी। एकबार शूर्पणखाने आकर रामचन्द्रजीसे विवाह करनेके लिए प्रस्ताव किया। उसकी इस धृष्टता एवं दुष्टताको देखकर लक्ष्मणने उसकी नाक और कान काट डाली। इसके बाद रामचन्द्रने उस वनमें रहनेवाले सभी राक्षसोंका वध किया। इस समाचारको सुनकर रावण बहुत क्रुद्ध हुआ। तब उसने अपने मामा मारीचके सहयोगसे राम और लक्ष्मणको दूर ले जाकर स्वयं मुनिका वेष धारणकर सीताका अपहरण कर लिया।

सीताके अपहरणसे दुःखित और शोकाकुल रामचन्द्र इधर-उधर सीताको खोजते हुए किष्किन्धा नगर पहुँचे। वहाँ बालिको मारकर इन्होंने वानरोंके राजा सुग्रीवसे मैत्री की। उसके बाद सुग्रीवके द्वारा भेजे गये हनुमानसे सीताका लङ्कामें निवास सुनकर रामचन्द्रने वानरोंकी सेनाके साथ समुद्रमें पुल बाँधकर लङ्काके ऊपर आक्रमण किया। वहाँ रावणके साथ रामचन्द्रका बहुत भयङ्कर युद्ध हुआ। युद्धमें अनेक राक्षसों और वानरोंकी मृत्यु हुई। लक्ष्मण भी एक बार मूर्च्छित हो गये। किन्तु अन्तमें राक्षस-सेनाकी हार हुई। रामचन्द्रके द्वारा रावण मारा गया। उसके बाद विभीषणको राज्य पर अभिषिक्त कर और सीताको लेकर रामचन्द्र लक्ष्मण और सभी वानरोंके साथ अयोध्या आ गये।

अयोध्याम् आगत्य रामचन्द्रः भरतात् राज्यभारं जग्राह तथा भ्रातृभिः सह बहुवर्षपर्यन्तं राज्यं चकार। श्रीरामचन्द्रः महान् दयालुः तथा प्रजावत्सलः राजा आसीत्। अयं प्रजानाम् अनुरञ्जनाय महासाध्वीं सीताम् अपि वने परित्यक्तवान्। अस्य राज्ये सर्वे जनाः सुखिनः, सदाचार-परायणाः, आरोग्यवन्तः, धन-धान्य-सम्पन्नाः हृष्टपुष्टाः च आसन्। अतः एव जगति रामराज्यं आदर्शराज्यं मन्यते। अनेन एव कारणेन महात्मा गान्धी भारते रामराज्यं स्थापयितुं समीहते स्म।



नीतिधर्मोपदेष्टा श्रीकृष्णः

मथुरायां वसुदेवनामा एकः यदुवंशीयः राजा आसीत्। तस्य विवाहः सौरसेन-राज्यस्य अधिपतेः कंसस्य भगिन्या देवक्या सह संजातः आसीत्। विवाहानन्तरं यदा कंसः स्वकीयां भगिनीं देवकीं तथा भगिनीपतिं वसुदेवं च रथम् आरोह्य आगच्छति स्म तदा स इमाम् आकाशवाणीं श्रुतवान्—अरे कंस! अस्याःएव तव भगिन्याः देवक्याः अष्टमः प्रसवः ते हननं करिष्यति इति।

अयोध्यामें आकर रामचन्द्रने भरतसे राज्यका भार लिया और भाइयोंके साथ बहुत वर्ष तक राज्य किया। श्रीरामचन्द्रजी बहुत दयालु तथा प्रजावत्सल राजा थे। इन्होंने प्रजाकी प्रसन्नताके लिए महासाध्वी सीताको भी वनमें छोड़ दिया। इनके राज्यमें सभी लोग सुखी, सदाचारपरायण, नीरोग, धन-धान्य सम्पन्न, और हृष्ट-पुष्ट थे। इसीलिए संसारमें रामका राज्य आदर्श राज्य माना जाता है। इसी कारण महात्मा गाँधीजी भारतमें रामराज्यको स्थापित करना चाहते थे।



नीतिधर्मोपदेष्टा श्रीकृष्ण

मथुरामें वसुदेव नामके एक यदुवंशी राजा थे। उनका विवाह शौरसेन राज्यके राजा कंसकी बहन देवकीके साथ हुआ था। विवाहके बाद जब कंस अपनी बहन देवकी तथा बहनके पति वसुदेवको रथपर बैठाकर आ रहा था तब उसने यह आकाशवाणी सुनी—अरे कंस, इसी तुम्हारी बहन देवकीका आठवाँ लड़का तुम्हारा हनन करेगा।

इमाम् अशुभाम् आकाशवाणीं श्रुत्वा कंसः अतीव चिन्तातुरः तथा कुपितः बभूव। स क्रोधेन असिं निष्कास्य देवकीं हन्तुं प्रचक्रमे। परन्तु तस्य भगिनीपतिः वसुदेवः—

"इमां मा मारय। अस्याः ये ये पुत्राः भविष्यन्ति तान् सर्वान् अपि अहं तुभ्यं समर्पयिष्यामि। तान् एव त्वं हन्याः, न तु इमां भगिनीम्।" इति प्रार्थयामासे। कंसः वसुदेवस्य इमां प्रार्थनां श्रुत्वा देवक्याः वधात् विरराम परं तौ उभौ अपि कारागारे बद्धौ चकार।

अनन्तरं देवक्याः गर्भात् ये ये बालकाः अभूवन् तान् सर्वान् कंसः जघान। एवम् एकैकशः सप्त बालकाः हताः। पुत्राणां वधात् कंसः देवकी च उभौ अपि अति दुःखितौ चिन्ताकुलौ च आस्ताम्। अतः वसुदेवः श्रीकृष्णं जातमात्रम् एव आदाय गोकुलं जगाम। तत्र च स्वमित्रस्य नन्दगोपस्य गृहे तं स्थापयित्वा तस्य नवजातां कन्यां कंसाय समर्पितवान्। ततः कंसः यावदेव तां गृहीत्वा भूमौ पोथयितुं प्रावर्तत तावदेव सा कन्या आकाशं उत्पपात, अब्रवीत् च यत्— अरे दुष्ट कंस! किं मां हन्सि? तव हन्ता तु अन्यत्र जन्म गृहीतवान् अस्ति।

इतः गोकुले श्रीकृष्णः नन्दपत्न्याः यशोदायाः लालन-पालनाभ्यां दिने दिने तथा अबर्द्धत यथा शुक्लपक्षे चन्द्रमाः बर्द्धते। अयं वर्णेन श्यामः परन्तु अतीव सुन्दरः आसीत्। अत एव सर्वेषामपि

इस अशुभ आकाशवाणीको सुनकर कंस बहुत चिन्तित तथा कुपित हुआ। वह क्रोधसे तलवार निकालकर देवकीको मारनेके लिए दौड़ा। किन्तु उसके बहनोई वसुदेवने—

"इसको मत मारो। इसके जो जो पुत्र होगें उन सभीको मैं तुम्हें दे दूँगा। उन्हींको तुम मारना, इस बहनको नहीं" इस प्रकार प्रार्थना की। कंस वसुदेवकी इस प्रार्थनाको सुनकर देवकीको मारनेसे रुक गया—किन्तु उन दोनोंको जेलमें बन्द कर दिया।

इसके बाद देवकीके गर्भसे जो-जो लड़के हुए उन सभीको कंसने मार डाला। इस प्रकार एक-एक करके सात लड़के मारे गए। पुत्रोंके बधसे कंस और देवकी दोनों ही बहुत दुःखी और चिन्ताकुल थे। इसलिए वसुदेव श्रीकृष्णके होते ही उन्हें लेकर गोकुल चले गये और वहाँ अपने मित्र नन्दगोपके घरमें उन्हें रखकर उनकी नवजात कन्याको कंसको दे दिया। उसके बाद कंसने जैसे ही उसे लेकर जमीन पर पटकना चाहा वैसे ही वह कन्या आकाशमें उड़ गयी और बोली कि—अरे दुष्ट कंस! क्यों मुझे मारते हो? तुमको मारनेवालेने तो दूसरी जगह जन्म ले लिया है।

इधर गोकुलमें श्रीकृष्ण नन्दकी पत्नी यशोदाके लालन-पालनसे दिन-प्रतिदिन उस प्रकार बढ़े जिस प्रकार शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ते हैं। ये रंगसे साँवले परन्तु बहुत सुन्दर थे। इसीलिए सभी

गोकुलवासिनां स अत्यन्तं प्रियः बभूव। स गोपबालकैः सह खेलति स्म। तैः एव सह वने वने गाः चारयति स्म। यदाकदाचित् गोपिकानां गृहं गत्वा तथा चोरयित्वा दधि दुग्धं नवनीतं च भक्षयति स्म। रासक्रीडां करोति स्म तथा अतीव मधुरस्वरेण मुरलीं वादयित्वा सर्वान् जनान् मोहयति स्म।

अयं बाल्यकाले अनेकानि अद्भुतानि कार्याणि कृतवान्। कंसेन प्रेषितान् अनेकान् राक्षसान् हतवान्। यमुनायां कालियस्य सर्पस्य दमनं कृतवान्। कनिष्ठायाः अङ्गुल्याः उपरि गोवर्द्धनं पर्वतं धारितवान्। स्वकुलगुरोः आचार्यसन्दीपनेः गृहे सर्वाः विद्याः अधीतवान्। अन्ते च मल्लयुद्धे कंसं हत्वा स्वकीयौ मातापितरौ कारागारात् मोचितवान्। एभिः कार्यैः शौर्ये वीर्ये बले विद्यायां नीतिशास्त्रे युद्धे च अस्य महती प्रसिद्धिः जाता।

कुरुक्षेत्रे यदा कौरवाणां पाण्डवानां च मध्ये युद्धम् अजायत तदा अयं अर्जुनस्य सारथिः आसीत्। अस्य एव सहयोगेन पाण्डवानां विजयः कौरवाणां च पराजयः जातः। एवञ्च सर्वेषाम् अन्यायिनां दुष्टनृपाणां विनाशं कृत्वा श्रीकृष्णः देशे सर्वत्र धर्मस्य न्यायस्य तथा शान्तेः स्थापनं कृतवान्।

अस्यैव महायुद्धस्य आरम्भे यदा अर्जुनः युद्धे सर्वेषां स्वसम्बन्धिनां मरणभयात् युद्धं कर्तुं न ऐच्छत् तदा श्रीकृष्णः

गोकुलवासियोंको वे अत्यन्त प्रिय हो गए। वे गोपोंके लड़कोंके साथ खेलते थे। उन्हींके साथ वन-वनमें गायोंको चराते थे। कभी-कभी गोपियोंके घर जाकर और चुराकर दही, दूध और मक्खन खाते थे। रासलीला करते थे। बहुत मीठे स्वरसे मुरली बजाकर सब लोगोंको मोहित कर देते थे।

उन्होंने बचपनमें अनेक अद्भुत कार्य भी किये। कंसके द्वारा भेजे गये अनेक राक्षसोंको मारा। यमुनामें कालिय सर्पका दमन किया। कनिष्ठ अँगुलीके ऊपर गोवर्द्धन पर्वतको धारण किया। अपने कुलगुरु आचार्य सन्दीपनिके घरमें सभी विद्यायें पढ़ीं और अन्तमें मल्लयुद्धमें कंसको मारकर अपने माता-पिताको जेल से छुड़ाया। इन कार्योंसे शूरतामें, वीरतामें, बलमें, विद्यामें, नीतिशास्त्रमें और युद्धमें इनकी बहुत प्रसिद्धि हुई।

कुरुक्षेत्रमें जब कौरवों और पाण्डवोंके बीच युद्ध हुआ तब ये अर्जुनके सारथि थे। इन्हींके सहयोगसे पाण्डवोंका विजय और कौरवोंका पराजय हुआ। इस प्रकार सभी अन्यायी दुष्ट-राजाओंका विनाश करके श्रीकृष्णने देशमें सभी जगह धर्मकी, न्यायकी तथा शान्तिकी स्थापना की।

इसी महायुद्धके आरम्भमें जब अर्जुन युद्धमें अपने सभी सम्बन्धियोंके मरनेके भयसे युद्ध करना नहीं चाह रहे थे तब श्रीकृष्णने

निष्काम–कर्मयोगस्य उपदेशं दत्वा अर्जुनं पुनरपि युद्धाय प्रवर्तयामास। सः एव उपदेशः भगवद्गीता–नामके ग्रन्थे लिखितः वर्तते। अत एव अस्य ग्रन्थस्य न केवलं भारतवर्षे अपि तु विदेशेषु अपि महती प्रसिद्धिः तथा महान् समादरः वर्तते।

एवं च अधर्मस्य विनाशं तथा धर्मस्य स्थापनं कृत्वा भगवान् श्रीकृष्णः अन्ते इमं लोकं परित्यज्य स्वलोकं जगाम।

भगवतः श्रीकृष्णस्य जीवनचरितं विशेषरूपेण महाभारते श्रीमद्भागवते च वर्णितं वर्तते। अनयोः ग्रन्थयोः अध्ययनेन ज्ञायते यत् अयं भगवान् श्रीकृष्णः एकः असाधारणः महापुरुषः आसीत्। तस्य सर्वाणि कार्याणि अलौकिकानि अद्भुतानि च आसन्। अयं धर्मशास्त्रे समाजशास्त्रे अध्यात्मशास्त्रे राजनीतौ युद्धविद्यायां सङ्गीतकलायां च नितरां प्रवीणः आसीत्। तस्मिन् उदारता, दया, परोपकारः, वाक्पाटवम्, कर्मकौशलं, दूरदर्शिता, स्वाभिमानः, प्रत्युत्पन्नमतित्वं, देश–जाति–समाजसेवा, भक्तवत्सलता चेत्यादयः सर्वे अपि गुणगणाः सहैव निवासम् अकुर्वन्।

भगवान् रामः भगवान् कृष्णश्च उभौ अपि भारतस्य आदर्श-पुरुषौ प्राणभूतौ च। अत एव सर्वैः अपि अस्माभिः अनयोः जीवनचरित्रं पठनीयम्। अनयोः उपदेशानां पालनं कर्तव्यम्। तथा च प्रयत्नः कर्तव्यः येन सर्वे बालकाः रामकृष्णसदृशाः आदर्शचरित्राः महापुरुषाः भवेयुः।



निष्काम कर्मयोगका उपदेश देकर अर्जुनको फिर युद्धके लिए लगाया। वही उपदेश भगवद्गीता नामक ग्रन्थमें लिखा गया है। इसीलिए इस ग्रन्थकी न केवल भारतवर्षमें प्रत्युत विदेशोंमें भी बहुत प्रसिद्धि तथा महान समादर है।

इस प्रकार अधर्मका विनाश तथा धर्मकी स्थापना करके भगवान श्रीकृष्ण अन्तमें इस संसारको छोड़कर अपने लोकको चले गए।

भगवान श्रीकृष्णका जीवनचरित विशेषरूपसे महाभारत और श्रीमद्भागवतमें वर्णित है। इन दोनों ग्रन्थोंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि ये भगवान श्रीकृष्ण एक असाधारण महापुरुष थे। उनके सभी कार्य अलौकिक और अद्भुत थे। ये धर्मशास्त्रमें, समाजशास्त्रमें, अध्यात्मशास्त्रमें, राजनीतिमें, युद्धविद्यामें और सङ्गीतकलामें अत्यन्त प्रवीण थे। उनमें उदारता, दया, परोपकार, वाक्पटुता, कर्मकौशल, दूरदर्शिता, स्वाभिमान, प्रत्युत्पन्नमतित्व, देश-जाति और समाजकी सेवा और भक्तवत्सलता इत्यादि सभी गुण साथ ही निवास करते थे। भगवान राम और भगवान कृष्ण दोनों ही भारतके आदर्शपुरुष और प्राण-स्वरूप हैं। इसीलिए हम सभीको इन दोनोंका जीवनचरित्र पढ़ना चाहिए, इनके उपदेशोंका पालन करना चाहिए और ऐसा प्रयास करना चाहिए जिससे सभी बालक राम और कृष्णके समान आदर्शचरित्रवाले महापुरुष हों।



आदिकविः वाल्मीकिः

बालकाः ? किं यूयं जानीथ यत् संसारस्य सर्वेषु कविषु क
कविः आदिकविः मन्यते, किं च काव्यम् आदिकाव्यं कथ्यते
अयम् एव महर्षिः वाल्मीकिः अस्ति यः संसारस्य सर्वेषु कवि
आदिकविः मन्यते तथा अनेन एव विरचितं श्रीमद्रामायणं काव
जगति आदिकाव्यं कथ्यते।

एतादृशी अस्य कथा श्रूयते। एष वाल्मीकिः आत्मन
यौवनावस्थायां महान् क्रूरस्वभावः तथा निर्दयः आसीत्। अ
वनेचरैः सह वने परिभ्रमन् सर्वदैव अन्येषां धनं लुण्ठति स्म, अन्ये
प्राणान् पीडयति स्म, पशून् पक्षिणश्च मारयति स्म, तेषाम् एव मांसे
स्वकीयम् उदरं भरतिस्म तथा निजं परिवारं च पालयति स्म। इद
एव तस्य दैनिकं कृत्यम् आसीत्। कीदृशम् आसीत् तस्य इ
निन्दनीयं घृणास्पदं च जीवनम् ?

एकदा वने परिभ्रमन्तं वाल्मीकिं केचन महर्षयः मिलिता
तान् दृष्ट्वा स तेषाम् अपि हननाय प्रवृत्तः। ततः ते महर्षि
तं प्रोचुः। अरे व्याध! त्वं प्रतिदिनं पापं कृत्वा स्वकुटुम्ब
पालनं करोषि। परन्तु यदा त्वम् अस्य पापस्य फलं भोक्ष्य
तदा तव कुटुम्बः अपि किं तत् फलं भोक्तुम् उद्यतः भविष्यति

आदिकवि वाल्मीकि

बालकों! क्या तुम लोग जानते हो कि संसारके सभी कवियोंमें कौन कवि आदि कवि माना जाता है और कौन सा काव्य आदिकाव्य कहा जाता है? ये ही महर्षि वाल्मीकि संसारके सभी कवियोंमें आदि कवि माने जाते हैं और इन्हींके द्वारा विरचित "श्रीमद्रामायण काव्य" आदिकाव्य कहा जाता है।

इस प्रकारकी इनकी कथा सुनी जाती है। ये वाल्मीकि अपनी युवावस्थामें बहुत क्रूर स्वभावके तथा निर्दयी थे। ये वनेचरोंके साथ घूमते हुए हमेशा दूसरोंका धन लूटते थे, दूसरोंके प्राणोंको पीडित करते थे, पशुओं और पक्षियोंको मारते थे तथा उन्हींके मांससे अपना पेट भरते थे और अपने परिवार को पालते थे। यही उनका दैनिक काम था। कैसा था उनका यह निन्दनीय और घृणास्पद जीवन!

एकबार वनमें घूमते हुए वाल्मीकिको कुछ महर्षि मिले। उनको देखकर वे उनको भी मारनेके लिए प्रवृत्त हुए। उसके बाद वे महर्षि उनसे बोले—अरे, शिकारी! तुम प्रतिदिन पाप करके अपने कुटुम्बका पालन करते हो। किन्तु जब तुम इस पापका फल भोगोगे तब तुम्हारा कुटुम्ब भी क्या उस फलको भोगनेके लिए तैयार होगा?

व्याधः उवाच—अवश्यं भविष्यति। ऋषयः ऊचुः-गृहं गत्वा स्वकुटुम्बं पृच्छ। ततः व्याधः गृहं गत्वा स्व-कुटुम्बजनान् पप्रच्छ। ततः तस्य कुटुम्बिनः जनाः अकथयन्—वयं त्वया उपार्जितस्य धनस्य फलं भोक्ष्यामः परं पापस्य फलं न भोक्ष्यामः। इदं श्रुत्वा व्याधः निराशः दुःखितश्च भूत्वा ऋषीणां समीपं समागतः सर्वं च वृत्तान्तं निवेदितवान्।

तदनन्तरं ते ऋषयः व्याधं बोधयामासुः। मूढ़! यानि यानि पापकर्माणि करोषि तेषां फलं त्वम् एकाकी एव भोक्ष्यसि, महत् कष्टं च प्राप्स्यसि। अतः अद्यारभ्य इदं सर्वम् अपि चौर्यं, लुण्ठनं पीडनं, प्राणिनां हिंसनं च त्यक्त्वा पुण्यकर्माणि कुरु। दुर्जनानां सङ्गं त्यक्त्वा सज्जनानां सङ्गं कुरु। मांसं परिहाय कन्द-मूल-फलादिकं भक्षय। भगवतः भजनं कुरु। महात्मनां सेवां कुरु। रामनाम्नः जपं कुरु तथा सर्वेषु प्राणिषु दयां कुरु। एभिः एव कर्मभिः तव पापेभ्यः उद्धारः भविष्यति, सर्वविधं कल्याणं भविष्यति तथा अन्ते च भगवत्प्राप्तिः भविष्यति।

ऋषीणाम् इमानि उपदेशवचनानि श्रुत्वा व्याधस्य हृदये सद्बुद्धेः उदयः बभूव। स सर्वाणि पापकर्माणि परित्यज्य तस्मात् एव दिनात् तमसानदी-तीरे आश्रमं निर्माय तपश्चर्यां कर्तुं प्रारेभे। ततः कतिपये काले व्यतीते स तपसः ज्ञानस्य च प्रभावेण महर्षिः बभूव।

शिकारी बोला—अवश्य होगा। ऋषि बोले–घर जाकर अपने कुटुम्बसे पूछो। तब शिकारीने घर जाकर अपने कुटुम्बियोंसे पूछा। तब उसके कुटुम्बी लोगोंने कहा—हमलोग तुम्हारे द्वारा उपार्जित धनके फलको भोगेंगे किन्तु पापके फलको नहीं भोगेंगे, यह सुनकर शिकारी निराश और दुःखित होकर ऋषियोंके पास आया और पूरा वृत्तान्त सुनाया।

उसके बाद ऋषियोंने शिकारीको समझाया! मूर्ख! तुम जो पापके कर्म करते हो उनका फल तुम अकेले ही भोगोगे और बहुत बड़ा कष्ट पाओगे। इसलिए आजसे यह सब चोरी करना, लूटना, किसीको पीड़ा पहुँचाना और प्राणियोंको मारना, छोड़कर पुण्यकर्मोंको करो। दुर्जनोंकी सङ्गति छोड़कर सज्जनोंकी सङ्गति करो। मांस छोड़कर कन्द, मूल फल इत्यादि खाओ। भगवानका भजन करो। महात्माओंकी सेवा करो। रामनामका जप करो तथा सब प्राणियों पर दया करो। इन्हीं कर्मोंसे तुम्हारा पापोंसे उद्धार होगा, सभी प्रकारका कल्याण होगा और अन्तमें भगवान्‌की प्राप्ति होगी।

ऋषियोंके इन उपदेशमय वचनोंको सुनकर शिकारीके हृदयमें सद्बुद्धिका उदय हुआ। उसने सभी पापके कर्मोंको छोड़कर उसी दिनसे तमसानदीके तीरपर आश्रम बनाकर तपश्चर्या करना आरम्भ किया। उसके बाद कुछ समयमें वह तप और ज्ञानके प्रभावसे महर्षि हुआ।

एकदा एष महर्षिः निजाश्रम-समीपे विचरन् एकेन व्याधेन वध्यमानं क्रौञ्चमिथुनं दृष्टवान्। इदं दृष्ट्वा शोकपीडितस्य महर्षेः मुखात् सहसा एकः श्लोकः निरगच्छत्। स श्लोकः अयम् आसीत्—

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वम् अगमः शास्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकम् अवधीः काममोहितम्॥

तदा वाल्मीकिं कवितानिर्माणे समर्थं दृष्ट्वा पितामह तस्य समीपे आगत्य प्रोवाच—महर्षे! काव्यनिर्माणे त्वं समर्थः असि। अतः रामकथां लिख! ततः वाल्मीकिः महर्षेः नारदस्य साहाय्येन रामकथां ज्ञात्वा रामायणं नाम महाकाव्यं रचयामास। अतः एव अयम् आदिकविः कथ्यते रामायणं आदिमहाकाव्यं कथ्यते।



ज्ञाननिधिः महर्षिः वेदव्यासः

भारतीयसमाजे भारतीयसाहित्ये च वाल्मीकिः तथा व्या इमे द्वे नामनी अत्यन्तं प्रसिद्धे, प्रतिष्ठिते तथा अभिवन्दनीये वर्ते

एक बार इस महर्षिने अपने आश्रमके पास घूमते हुए एक शिकारी द्वारा मारे जाते हुए क्रौञ्चपक्षियोंके एक जोड़ेको देखा। इसे देखकर शोकसे पीडित महर्षिके मुखसे अकस्मात् एक श्लोक निकला। (वह श्लोक यह था—)

अरे निषाद! तुमने क्रौंचपक्षीके इस मिथुन—जोड़ेमें से एकको, जो कामसुखमें विभोर था, मार डाला। इसलिए तुम अपने जीवनमें अनन्त कालतक कभी भी स्थिरता और शान्तिसे जीवित नहीं रहोगे।

तब वाल्मीकिको कविताके निर्माणमें समर्थ देखकर ब्रह्माजी उनके पास आकर बोले—महर्षि! काव्यके निर्माणमें तुम समर्थ हो। इसलिए रामकी कथा लिखो। उसके बाद वाल्मीकिने महर्षि नारदके सहयोगसे रामकी कथाको जानकर "रामायण" नामके महाकाव्यकी रचना की। इसीलिए ये आदिकवि कहे जाते हैं और रामायण आदि महाकाव्य कहा जाता है।



ज्ञाननिधि महर्षि वेदव्यास

भारतीय समाजमें और भारतीय साहित्यमें वाल्मीकि तथा व्यास ये दो नाम अत्यन्त प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित तथा अभिवन्दनीय हैं।

एतयोः मध्ये गतेषु पृष्ठेषु महर्षेः वाल्मीकेः जीवनकथा लिखिता अस्ति। इदानीं महर्षेः वेदव्यासस्य परिचयः दीयते तथा तस्य महत्त्वस्य वर्णनं क्रियते।

भगवान् वेदव्यासः भारतस्य एकः अद्वितीयः महापुरुषः अस्ति। तस्य जन्म, तस्य जीवनं, तस्य ज्ञानं, तस्य कर्माणि, तस्य साधना च सर्वमपि अद्भुतम् अवर्णनीयं च वर्तते। अस्य पिता महर्षिः पराशरः तथा अस्य माता निषादकन्या सत्यवती आसीत्। उभयोः सम्पर्केण यमुनानद्याः एकस्मिन् द्वीपे व्यासस्य जन्म अभूत्। अस्य अनेकानि नामानि अपि सन्ति गुणकर्मानुसारम्। अयं वर्णेन कृष्णः आसीत् तथा अस्य जन्म द्वीपे जातं तस्मात् अयं कृष्णद्वैपायनः इति कथ्यते। अयं वदरिकाश्रमे तपः कृतवान् अतः अस्य वादरायण इति नाम अस्ति। पूर्वं वेदः एकः आसीत्। पश्चात् तस्य अयं चतुर्धा विभागं कृतवान् एतेन कारणेन अयं वेदव्यासः इति नाम्ना अपि प्रसिद्धः अस्ति। क्वचित् क्वचित् अयं केवलं व्यासः इति नाम्ना अपि **अभिधीयते**।

महर्षेः वेदव्यासस्य एकं महत्त्वपूर्णं कार्यम् आसीत् शिष्याणां शिक्षणं तथा वेदधर्मप्रचाराय तेषां विभिन्नासु दिशासु प्रेषणम्। पैलः सुमन्तुः जैमिनिः वैशम्पायनश्चेति चत्वारः तथा पञ्चमः तस्य पुत्रः शुकदेवः इति पञ्च इमान् शिष्यान् वेदान् तथा पञ्चमं वे महाभारतं च अध्यापयामास तथा तान् दिक्षु विदिक्षु च प्रेषयामास

इस दोनोमें पिछले पृष्ठोंमें महर्षि वाल्मीकिकी जीवनकथा लिखी गयी है। इस समय महर्षि वेदव्यासका परिचय दिया जा रहा है और उनके महत्त्वका वर्णन किया जा रहा है।

भगवान् वेदव्यास भारतके एक अद्वितीय महापुरुष हैं। उनका जन्म, उनका जीवन, उनका ज्ञान उनके कर्म तथा उनकी साधना सभी अद्‌भुत तथा अवर्णनीय हैं। इनके पिता महर्षि पराशर तथा इनकी माता निषादकन्या सत्यवती थीं। दोनोंके सम्पर्कसे यमुना नदीके एक द्वीपमें व्यासका जन्म हुआ। गुण कर्मके अनुसार उनके अनेक नाम भी हैं। ये वर्णसे काले थे तथा उनका जन्म द्वीपमें हुआ इस कारण ये कृष्णद्वैपायन कहे जाते हैं। उन्होंने वदरिकाश्रममें तप किया इसलिए इनका वादरायण नाम है। पहले वेद एक ही था। बादमें उसका उन्होंने चार विभाग किये। इस कारण ये वेदव्यास नामसे प्रसिद्ध हैं। कहीं-कहीं ये केवल व्यास नामसे भी कहे जाते हैं।

महर्षि वेदव्यासका एक महत्त्वपूर्ण कार्य था शिष्योंका शिक्षण और वेद-धर्मके प्रचारके लिये उनको विभिन्न दिशाओंमें भेजना। उन्होंने पैल, सुमन्तु, जैमिनि, वैशम्पायन इन चारों तथा पाँचवें शिष्य उनके पुत्र शुकदेव इन पाँचों शिष्योंको वेद तथा पंचम वेद महाभारत पढ़ाया तथा उनको देश-विदेशमें भेजा।

पुनः अग्रे एतेषाम् अपि अनेके शिष्याः बभूवुः ये पुनः अन्यान् शिष्यान् शिक्षयामासुः। एवं भगवतः वेदव्यासस्य शिष्य-प्रशिष्य-परम्परा अगणनीया विद्यते।

महर्षेः वेदव्यासस्य द्वितीयं सर्वाधिक-महत्त्व-पूर्णं तथा अद्भुतं कार्यं वर्तते विशालसाहित्यस्य निर्माणम्। एकलक्षश्लोकानां महाभारतम्, एकलक्षाधिकश्लोकानां पुराणानि तथा उपपुराणानि, वेदान्तदर्शनस्य मुख्यः ग्रन्थः ब्रह्मसूत्रम्, व्याससंहिता चेत्यादयः व्यासदेवस्य कृतयः सन्ति। तस्य महाभारतं एकं तादृशं विशालं महाकाव्यं वर्तते यस्य संसारे कुत्रापि कापि तुलना नास्ति। अनया दृष्ट्या महर्षिः वेदव्यासः संसारस्य एकमात्रं महान् लेखकः अस्ति।

महाभारतस्य पुराणानां च अध्ययनेन ज्ञायते यत् अस्य महर्षेः धर्मस्य, अध्यात्मशास्त्रस्य, योगशास्त्रस्य, नीतिशास्त्रस्य, समाजशास्त्रस्य, इतिहासानां, लोककथानां च कीदृशं विशालं ज्ञानम् आसीत्। अनेन रचितानि अनेकानि पुराणानि विश्वकोशसदृशानि सन्ति येषु मानवोपयोगिनां सर्वेषाम् अपि ज्ञान-विज्ञान-सम्बन्धिनां विषयाणां विस्तृतनिरूपणं वर्तते। एतेन महर्षेः अगाधज्ञानस्य परिचयः लभ्यते।

शिष्याणां प्रशिक्षणं, वेदानां विभाजनं तथा साहित्यरचनाम् अतिरिच्य अन्येषु अपि क्षेत्रेषु व्यासदेवस्य विशिष्टतायाः, महत्तायाः, सूक्ष्मदर्शितायाः, सर्वेषां हितचिन्तनस्य च प्रमाणानि उपलभ्यन्ते। पाण्डुः

फिर आगे इनके भी अनेक शिष्य हुये जिन्होंने फिर अन्य शिष्योंको पढ़ाया। इस प्रकार भगवान् वेदव्यासकी शिष्य-प्रशिष्य-परम्परा अनगिनत है।

महर्षि वेदव्यासका दूसरा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तथा अद्भुत कार्य है - विशाल साहित्यका निर्माण। एक लाख श्लोकोंका महाभारत, एक लाखसे भी अधिक श्लोकोंका पुराण तथा उपपुराण, वेदान्तदर्शनका मुख्य ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र एवं व्याससंहिता इत्यादि व्यासदेवकी कृतियां है। उनका महाभारत एक वैसा विशाल महाकाव्य है जिसकी संसारमें कहीं भी कोई तुलना नहीं है। इस दृष्टिसे महर्षि वेदव्यास संसारके एक मात्र महान् लेखक हैं।

महाभारत और पुराणोंके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि इस महर्षिको धर्मका, अध्यात्मशास्त्रका, योगशास्त्रका, नीतिशास्त्रका, समाजशास्त्रका, इतिहासोंका और लोककथाओंका कितना विशाल ज्ञान था। इनके द्वारा रचित अनेक पुराण विश्वकोश जैसे हैं जिनमें मानवोपयोगी सभी ज्ञान-विज्ञान सम्बन्धी विषयोंका विस्तृत निरूपण है। इससे महर्षिके अगाध ज्ञानका परिचय मिलता है।

शिष्योंका प्रशिक्षण, वेदोंका विभाजन और साहित्यकी रचनाके अतिरिक्त अन्य क्षेत्रोंमें भी व्यासदेवकी विशिष्टताके, महत्ताके, सूक्ष्म-दर्शिताके तथा सभीके हितचिन्तनके प्रमाण मिलते हैं। पाण्डु,

धृतराष्ट्रः विदुरश्चेति त्रयः व्यासस्य पुत्राः आसन्। एतेषु विदुरः परमनीतिज्ञः तथा भगवतः कृष्णस्य महान् भक्तः आसीत्। अन्यौ द्वौ राज्यकर्तारौ आस्ताम्। अनयोः द्वयोः पुत्राणां—कौरवाणां पाण्डवानां च धर्म-नीतिशिक्षणाय वेदव्यासः सदा हस्तिनापुरम् आगच्छति स्म। कौरवाणां पाण्डवानां च युद्धस्य आरम्भे युद्धनिवारणाय वेदव्यासः तौ उभौ अपि बहु बोधितवान्। परन्तु दुर्योधनस्य दुराग्रहेण तस्य प्रयासः विफलः सञ्जातः। भयङ्करं युद्धं प्रावर्तत। महान् नरसंहारः अजायत। अनन्तरम् अस्यैव युद्धस्य वर्णने वेदव्यासः महाभारतस्य निर्माणं कृतवान् तथा सम्पूर्ण मानवसमाजस्य शाश्वतहिताय एकं धर्मनीतिबोधकं तथा विविधज्ञानविज्ञानानां निधानं इदं सुमहत् ग्रन्थरत्नं विशिष्ट सम्पत्तिरूपे समाजाय प्रदत्तवान्।

भगवान् वेदव्यासः आषाढशुक्लपूर्णिमायां जन्म गृहीतवान्। तेन इयं पूर्णिमा व्यासपूर्णिमानाम्ना प्रसिद्धा वर्तते यस्यां बहुषु स्थानेषु भगवतः व्यासस्य पूजा भवति। भारते व्यासाश्रमनाम्ना विभिन्नप्रदेशेषु अनेकानि आश्रमाणि प्रसिद्धानि सन्ति। व्यासद्वारा विरचितस्य श्रीमद्भागवतपुराणस्य प्रायः सर्वदैव सर्वत्र पाठः प्रवचनं च प्रचलति यत् धर्मप्रचारस्य पण्डितानां जीविकायाश्च एकं प्रबलं साधनं वर्तते।

एवं भारतवासिनाम् उपरि भगवतः व्यासस्य अनेके महान्तः उपकाराः सन्ति यैः वयम् कदापि अनृणाः भवितुं न शक्नुमः। *

धृतराष्ट्र और विदुर तीन व्यासके पुत्र थे। इनमें विदुर परम नीतिज्ञ तथा भगवान् कृष्णके महान् भक्त थे। अन्य दोनों राजकर्ता थे। इन दोनोंके पुत्रों-कौरवों और पाण्डवोंको धर्म और नीतिकी शिक्षा देनेके लिए वेदव्यास हमेशा हस्तिनापुर आते थे। कौरवों और पाण्डवोंके युद्धके आरम्भमें युद्ध समाप्त करनेके लिये वेदव्यासने उन दोनोंको बहुत समझाया। परन्तु दुर्योधनके दुराग्रहसे उनका प्रयास विफल हो गया। भयंकर युद्ध प्रारम्भ हुआ। बहुत बड़ा नरसंहार हुआ। बादमें इसी युद्धके वर्णनमें वेदव्यासने महाभारतका निर्माण किया तथा समग्र मानवसमाजके शाश्वत हितके लिये धर्म और नीतिबोधक और विविध ज्ञान-विज्ञानके निधान स्वरूप इस महान् ग्रन्थरत्नको विशिष्ट सम्पत्तिके रूपमें समाजको प्रदान किया।

भगवान् वेदव्यासने आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमाको जन्म लिया था। इस कारण यह पूर्णिमा व्यासपूर्णिमाके नामसे प्रसिद्ध है, जिसमें बहुत स्थानोंमें भगवान् व्यासकी पूजा होती है। भारतमें व्यासाश्रम नामसे विभिन्न प्रदेशोंमें अनेक आश्रम प्रसिद्ध हैं। व्यास द्वारा लिखित श्रीमद्भागवतपुराणका हमेशा ही सभी जगह पाठ और प्रवचन होता है जो धर्मप्रचार और पंडितोंकी जीविकाका एक प्रबल साधन है।

इस प्रकार भारतवासियोंके ऊपर भगवान् व्यासके अनेक महान् उपकार हैं जिनके ऋणसे हम कभी मुक्त नहीं हो सकते। *

महाकारुणिकः बुद्धः

२५०० वर्षेभ्यः पूर्वं कपिलवस्तु-नामकं नगरं कौशलानां राजधानी आसीत्। तत्र शुद्धोदननामा शाक्यवंशीयः महाप्रतापी राजा राज्यं करोति स्म। तस्य मायादेवीनाम्नी परमपतिव्रता राज्ञी आसीत्। महता तपोऽनुष्ठानेन तयोः एकः पुत्रः समुत्पन्नः। तस्य नाम सिद्धार्थः इति कृतम्। अयमेव सिद्धार्थः पश्चात् बोधे प्राप्ते बुद्धः इति नाम्ना प्रसिद्धः बभूव।

जन्मनः पश्चात् एकसप्ताहानन्तरम् एव अस्य मातुः मरणं जातम्। अतः तस्य विमाता गौतमी एव तस्य लालनं पालनं पोषणं च कृतवती। अत एव अस्य द्वितीयं नाम गौतम इत्यपि प्रसिद्धं वर्तते।

पितुः प्रयत्नेन सिद्धार्थः बाल्यकाले एव सर्वाः विद्याः सर्वाः कलाश्च अधीतवान्। युवराजोचितान् सर्वान् गुणान् अपि अयं शिक्षितवान्। तथापि अयं प्रायेण एकान्तप्रेमी आसीत्। क्रीडायां हासे विलासे वा अस्य मनः न लगति स्म। सर्वदा अयं चिन्तन-परायणः एव तिष्ठति स्म। तस्य ईदृशीं मनोवृत्तिं दृष्ट्वा राजा शुद्धोदनः तस्य एकया राजकन्यया सह विवाहं कृतवान् येन भोगविलासेषु आसक्तः सिद्धार्थः विरक्तः न भवेत्। विवाहानन्तरं सिद्धार्थः कतिपयवर्षाणि राज्यम् अपि चकार।

महाकारुणिक बुद्ध

२५०० वर्ष पूर्व कपिलवस्तु नामका नगर कौशलोंकी राजधानी था। वहाँ शुद्धोदन नामका शाक्यवंशीय महाप्रतापी राजा राज्य करते थे। उनकी माया देवी नामकी परमपतिव्रता रानी थी। बड़े तप और अनुष्ठानसे उन दोनोंको एक पुत्र हुआ। उसका नाम सिद्धार्थ रखा गया। यही सिद्धार्थ बादमें ज्ञान (बोध) प्राप्त हो जाने पर ''बुद्ध''के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

जन्मके एक सप्ताह बाद इनकी माता मर गयी। इसलिए इनकी सौतेली माँ गौतमीने इनका लालन-पालन और पोषण किया। इसीलिए इनका दूसरा नाम गौतम भी प्रसिद्ध है।

पिताके प्रयाससे सिद्धार्थने बचपनमें ही सभी विद्याओं और सभी कलाओंको पढ़ लिया। युवराजके लिए उचित सभी गुणोंको इन्होंने अच्छी तरह सीखा। फिर भी ये प्रायः एकान्तप्रिय थे। खेलनेमें, हँसनेमें अथवा विलासमें इनका मन नहीं लगता था। हमेशा ये चिन्तनपरायण ही रहते थे। उनकी ऐसी मनोवृत्ति देखकर राजा शुद्धोदन ने उनका एक राजकन्याके साथ विवाह कर दिया जिससे कि भोग-विलासमें आसक्त सिद्धार्थ विरक्त न हों। विवाहके बाद सिद्धार्थने कुछ वर्षों तक राज्य भी किया।

परन्तु विवाहानन्तरं राज्यं कुर्वाणस्य अपि सिद्धार्थस्य मनः भोगविलासेषु आसक्तं न बभूव। जगति नानाविधैः दुःखैः दुःखितान् जनान् दृष्ट्वा तस्य मनसि कथमपि शान्तिः न आसीत्। केन उपायेन एतेषां दुःखनाशः भविष्यति? कथं सर्वे जनाः सुखिनः भविष्यन्ति? इत्येव स सर्वदा चिन्तयति स्म। संसारस्य इमां दुःखमयीं दशां पश्यतः तस्य हृदयं शनैः शनैः सांसारिक–सुखेभ्यः विरक्तं जातम्। अन्ते च स एकस्मिन् राहुलनामके पुत्रे उत्पन्ने एकस्यां रात्रौ सुप्ताम् एव स्वकीयां पत्नीं यशोधरां परित्यज्य गुप्तरूपेण नगराद् बहिः गमनं चकार।

अनन्तरं स मगधदेशस्य वैशालीनाम्नि नगरे गत्वा सर्वेषामपि वेद–वेदान्तादीनां योगशास्त्रस्य च समुचितां शिक्षाम् अवाप। परं तेनापि तस्य सन्तोषः न अभूत्। ततः स पाटलिपुत्रं गयानगरं च गतवान्। तत्रापि तेन महता प्रयत्नेन विविधशास्त्राणाम् अभ्यासः कृतः। तेनापि शान्तिम् अलभमानः स स्वशिष्यान् आदाय अरण्ये कठोरां तपश्चर्यां कर्तुं प्रारेभे। परं तेनापि तस्य अभीष्टसिद्धिः न बभूव।

तत्पश्चात् एकदा गयानगरस्य समीपवर्तिनि एकस्मिन् तपोवने एकस्य पिप्पलस्य अधस्तात् उपविश्य ध्यानमग्नस्य सिद्धार्थस्य अकस्मात् बोधोदयः जातः। तेन तस्य सर्वापि अशान्तिः अपगता

किन्तु विवाहके उपरान्त राज्य करते हुए भी सिद्धार्थका मन भोगविलासोंमें आसक्त नहीं हुआ। संसारमें विभिन्न प्रकारके दुःखोंसे दुःखित लोगोंको देखकर उनके मनमें किसी भी तरह शान्ति नहीं थी। किस प्रकार इनके दुःखोंका नाश होगा? किस प्रकार सभी लोग सुखी होंगे? यही वे हमेशा सोचते थे। संसारकी इस दुःखमयी दशाको देखते हुए उनका हृदय धीरे-धीरे सांसारिक सुखोंसे विरक्त हो गया और अन्तमें राहुल नामक पुत्रके उत्पन्न हो जाने पर एक रातको सोई हुई अपनी पत्नी यशोधराको छोड़कर गुप्त रूपसे नगरसे बाहर चले गये।

इसके बाद उन्होंने मगध देशके वैशाली नामक नगरमें जाकर सभी वेद-वेदान्त इत्यादि की और योगशास्त्र की समुचित शिक्षा प्राप्त की। परन्तु उससे भी उनको सन्तोष नहीं हुआ। उसके बाद वे पटना और गया गए। वहाँ भी उन्होंने महान प्रयत्नसे विविध शास्त्रोंका अभ्यास किया। उससे भी शान्ति नहीं पाकर उन्होंने अपने शिष्योंको लेकर वनमें जाकर कठोर तपस्या करना प्रारम्भ किया। परन्तु उससे भी उनकी अभीष्टकी सिद्धि नहीं हुई।

उसके बाद एकबार गयाके समीप एक तपोवनमें एक पीपलके नीचे बैठे ध्यानमें मग्न सिद्धार्थको अकस्मात् बोधका उदय हुआ। उससे उनकी सब अशान्ति दूर हो गयी और

सर्वे च मनसः संशयाः विनाशं गताः। यस्य वस्तुनः प्राप्तये स एतावन्तं प्रयत्नं करोति स्म, एतावत् कष्टं सहते स्म तत् वस्तु तदानीं तस्य हस्तगतं बभूव। ततः स तस्मात् एव दिनात् बुद्ध इति संज्ञां प्राप। यस्य पिप्पलस्य अधस्तात् तस्य बोधः जातः स तस्मात् दिनात् बोधिवृक्ष इति प्रसिद्धिं गतः। एष वृक्षः अद्यापि बोधगयानगरे बुद्धमन्दिरस्य समीपे जीर्ण-शीर्ण-दशायां वर्तमानः अस्ति।

ज्ञानप्राप्तेः पश्चात् बुद्धदेवः स्वीयस्य नूतनज्ञानस्य प्रचारे संलग्नः जातः। सर्वप्रथमं स वाराणसी-समीपवर्तिनि सारनाथनामके स्थाने समागतः। अत्रैव स स्वकीय-सिद्धान्तानां प्रवचनस्य प्रचारस्य च आरम्भं कृतवान्। अत्र स सर्वप्रथमं बहून् भिक्षून् स्वकीयं धर्मं बोधयामास। ततश्च तान् स्वधर्मप्रचाराय भिन्नभिन्न-दिशासु भिन्नभिन्न-स्थानेषु च प्रेषितवान्। अनन्तरं स स्वयमपि समस्ते देशे भ्रामं भ्रामं पूर्णरूपेण स्वधर्मस्य प्रचारं कृतवान्। अयं स्वभ्रमणकाले बहून् जनान्, बहून् पण्डितान्, बहून् नरपतीन् च स्वधर्मे दीक्षितान् कृतवान्। अल्पकाले एव एतस्य नूतनेन ज्ञानालोकेन समस्तः देशः समुद्भासितः बभूव।

मगधस्य महाराजः अशोकः भगवतः बुद्धस्य अन्यतमः शिष्यः आसीत्। अयं स्वकीयं पुत्रं स्वकीयां कन्यां तथा अन्यान् अपि बहून्

सभी मनकी शंकायें नष्ट हो गयीं। जिस वस्तुको प्राप्त करनेके लिए इतना प्रयास करते थे, इतना कष्ट सहते थे, वह वस्तु उस समय उनको हस्तगत हो गयी। उसके बाद उन्होंने उसी दिनसे "बुद्ध" इस संज्ञाको प्राप्त किया। जिस पीपलके नीचे उनको बोध (ज्ञान) हुआ, वह उस दिनसे "बोधिवृक्ष" नामसे प्रसिद्ध होगया। यह वृक्ष आज भी बोध गयामें बुद्ध मन्दिरके पास जीर्ण-शीर्ण दशामें विद्यमान है।

ज्ञान प्राप्त हो जानेके बाद बुद्धदेव अपने नये ज्ञानके प्रचारमें लग गए। सबसे पहले वे वाराणसीके पास सारनाथ नामक स्थान पर आए। यहीं उन्होंने बहुत भिक्षुओंको अपना धर्म समझाया और उसके बाद उनको अपने धर्म के प्रचारके लिए भिन्न-भिन्न दिशाओं और भिन्न-भिन्न स्थानों पर भेजा। इसके बाद उन्होंने स्वयं भी पूरे देशमें घूमते हुए पूर्ण रूपसे अपने धर्मका प्रचार किया। इन्होंने घूमते समय बहुत लोगोंको, बहुत पण्डितोंको और बहुत नरपतियोंको अपने धर्ममें दीक्षित किया। थोड़े समयमें ही इनके नये ज्ञानके आलोकसे पूरा देश समुद्भासित (चमत्कृत) हो गया।

मगधके राजा अशोक भगवान बुद्धके अन्यतम शिष्य थे। इन्होंने अपने पुत्र, अपनी कन्या तथा दूसरे भी बहुत

विदुषः बौद्धधर्मस्य प्रचाराय विदेशेषु प्रेषितवान्। अतः चीन-जापान-जावा-सुमात्रा-कोरिया-मंगोलिया-प्रभृतिदेशेषु अपि बौद्ध-धर्मस्य सम्यक् प्रचारः जातः।

एवं पञ्चचत्वारिंशद्वर्षपर्यन्तं निरन्तरं विभिन्नस्थानेषु स्वधर्मस्य प्रचारं कुर्वाणः बुद्धदेवः एकदा महाराजस्य शुद्धोदनस्य प्रेरणया स्वेच्छया च स्वजन्मभूमौ कपिलवस्तुनगरे समागतः। तत्र स समस्तेन स्वकीयेन परिवारेण सुहृद्वर्गेण च मिलित्वा परां प्रसन्नतां प्राप, समस्तः राजपरिवारश्च अस्य गुणैः ज्ञानेन प्रभावेण च आकृष्टः भूत्वा तस्य अनुयायी बभूव। ततः कतिपय समयानन्तरं भगवान् बुद्धदेवः कुशीनगरे देहविसर्जनं कृत्वा परमं निर्वाणं प्राप्तवान्। अनन्तरं देशे विदेशेषु च अनेके प्रख्याताःबौद्धाचार्याः अभूवन् ये विश्वे बौद्धधर्मस्य भारतस्य च प्रतिष्ठां चरमां कोटिं प्रापितवन्तः।



अद्वैतसिद्धान्तप्रतिष्ठापकः श्रीशङ्कराचार्यः

कः खलु ईदृशः वैदिकधर्माभिमानी भारतीयः भविष्यति यः वैदिकधर्मोद्धारकस्य श्रीमदाद्यशङ्कराचार्यस्य नाम्ना परिचितः न स्यात्।

विद्वानोंको बौद्ध धर्मके प्रचारके लिए विदेशोंमें भेजा। इसलिए चीन, जावा, सुमात्रा, कोरिया, मंगोलिया आदि देशोंमें भी बौद्ध-धर्मका अच्छा प्रचार हुआ।

इस प्रकार ४५ वर्ष तक निरन्तर (लगातार) विभिन्न स्थानोंमें अपने धर्मका प्रचार करते हुए बुद्धदेव एकबार महाराज शुद्धोदनकी प्रेरणा और स्वेच्छासे अपनी जन्मभूमि कपिलवस्तुमें आए। वहाँ वे सभी अपने परिवार और सुहृद्वर्गसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त किए और पूरा राजपरिवार इनके गुण, ज्ञान और प्रभावसे आकृष्ट होकर उनके अनुयायी हो गया। कुछ समयके बाद भगवान बुद्धदेवने कुशीनगरमें देह विसर्जन करके परम निर्वाणको प्राप्त किया। अनन्तर देशमें और विदेशोंमें भी अनेक प्रख्यात बौद्ध आचार्य हुए जिन्होंने बौद्धधर्म एवं भारतकी प्रतिष्ठाको चरम कोटि तक पहुँचा दिया।



अद्वैतसिद्धान्तप्रतिष्ठापक श्रीशङ्कराचार्य

कौन भला ऐसा वैदिकधर्माभिमानी भारतीय होगा जो वैदिक धर्मका उद्धार करनेवाले श्रीआद्यशङ्कराचार्यके नामसे परिचित न हो।

७८८ तमे ईशवीय संम्वत्सरे दक्षिणदेशे एकस्य ब्राह्मणस्य कुले अस्य जन्म अभूत्। एतस्य मातुः नाम कामाक्षीदेवी आसीत्। बाल्यकाले एव अस्य पितुः देहावसानं बभूव अतः अस्य माता एव एतस्य सर्वप्रकारेण पालनं पोषणं च कृतवती। भगवतः शङ्करस्य आराधनया एतस्य जन्म अभूत् अत एव अस्य शङ्कर इति नाम कृतम्।

शङ्करस्य बुद्धिः स्वभावतः एव तीव्रा आसीत्। अयम् अष्टवर्षीयः एव बहुषु विषयेषु विशिष्टं ज्ञानं लब्धवान्। शनैः शनैः अस्य हृदये वैराग्यस्य अपि भावना उत्पन्ना जाता। यद्यपि अस्य माता तस्य वैराग्यमयीं बुद्धिं परिवर्तयितुं बहु प्रयत्नं कृतवती तथापि तस्य विचारे परिवर्तनं न जातम्। तस्य ज्ञानं वैराग्यं च दिनानुदिनं तथा अवर्धत यथा शुक्लपक्षे चन्द्रमाः वर्धते।

अनन्तरं शङ्करः गुरोः अन्वेषणं कुर्वन् गोविन्दपादाचार्य-नामकस्य विदुषः आश्रमं गतवान्। गोविन्दपादाचार्यः शङ्करस्य अगाधं ज्ञानं, विलक्षणां बुद्धिं, तीव्रं च वैराग्यं दृष्ट्वा अतीव प्रमुदितः बभूव। स शङ्करं शिष्यं कृत्वा सर्वाणि शास्त्राणि तम् अध्यापयामास। शङ्करः अपि अल्पेन एव कालेन सकलेषु शास्त्रेषु ज्ञान-कर्मयोगयोः च विलक्षणं पाण्डित्यं प्राप्तवान्। अनन्तरं स तस्माद् एव गुरोः

७८८ ई० संवत्सरमें दक्षिण देशमें एक ब्राह्मणके कुलमें इनका जन्म हुआ था। इनकी माताका नाम कामाक्षी था। बचपनमें ही इनके पिताजीका देहान्त हो गया इसलिए इनकी माताने ही इनका सभी प्रकारसे पालन और पोषण किया। भगवान शङ्करकी आराधनासे इनका जन्म हुआ इसीलिए इनका ''शङ्कर'' यह नाम रखा गया।

शङ्करकी बुद्धि स्वभावसे ही तीव्र थी। इन्होंने आठ वर्षकी ही अवस्थामें बहुत विषयोंमें विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर लिया धीरे-धीरे इनके हृदयमें वैराग्यकी भी भावना उत्पन्न हो गयी। यद्यपि इनकी माताजीने इनकी वैराग्यमयी बुद्धिको बदलनेके लिए बहुत प्रयत्न किया फिर भी उनके विचारमें परिवर्तन नहीं हुआ। उनका ज्ञान और वैराग्य दिन-प्रतिदिन उस प्रकार बढ़ता गया जिस प्रकार शुक्लपक्षका चन्द्रमा बढ़ता है।

इसके बाद शङ्कर गुरुको खोजते हुए गोविन्दपादाचार्यनामक विद्वानके आश्रममें गए। गोविन्दपादाचार्य शङ्करका अगाध ज्ञान, विलक्षण बुद्धि और तीव्र (तेज) वैराग्य देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने शङ्करको शिष्य बनाकर सभी शास्त्रोंको उन्हें पढ़ाया। शङ्करने भी थोड़े ही समयमें सभी शास्त्रोंमें तथा ज्ञान और कर्मयोगमें विलक्षण पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। इसके बाद उन्होंने उसी गुरु

गोविन्दपादाचार्यात् संन्यासदीक्षां गृहीतवान्। अत एव अयं शङ्कराचार्यः इति नाम्ना जगति विख्यातः बभूव।

भगवतः शङ्कराचार्यस्य उदयकाले देशे सर्वत्र बौद्ध-धर्मस्य प्रचारः आसीत्। अतः गोन्दिपादाचार्यः शङ्कराचार्यं समर्थं ज्ञात्वा तम् आदिष्टवान् यत् त्वं सम्प्रति देशे सर्वत्र भ्रामं भ्रामं बौद्धधर्मस्य स्थाने सनातन-वैदिकधर्मस्य प्रचारं कुरु। गुरुवरस्य इमाम् आज्ञां शिरसा गृहीत्वा शङ्कराचार्यः देशभ्रमणाय निर्गतः सर्वत्र च वैदिकधर्मस्य प्रचारं कर्तुं प्रारभत।

प्रचारकाले अनेकैः बौद्धपण्डितैः सह अस्य अनेके शास्त्रार्थाः अभूवन्। परन्तु शास्त्रार्थे अस्य सम्मुखे कोऽपि अवस्थातुं न शशाक। अस्य असाधारणीं विद्वत्तां विलक्षणं वाक्पाटवं च दृष्ट्वा सर्वे प्रतिवादिनः हतप्रभाः पराजिताश्च बभूवुः। एवं च अल्पकालेन एव अनेन महात्मना समस्ते देशे विलुप्यमानस्य सनातनधर्मस्य पुनरपि महान् प्रचारः कृतः। अत एव अयं सनातन-वैदिकधर्मस्य उद्धारकः प्रचारकश्च मन्यते।

भगवान् शङ्कराचार्यः वैदिकधर्मस्य सिद्धान्तानां प्रतिष्ठापनाय प्रतिवादिनां खण्डनाय च बहूनि ग्रन्थरत्नानि रचयामास। तेषु ब्रह्मसूत्रस्य शारीरकभाष्यम्, गीतायाः भाष्यम्,

गोविन्दपादाचार्यसे संन्यासकी दीक्षा ली। इसीलिए ये शङ्कराचार्यके नामसे संसारमें विख्यात हुए।

भगवान शङ्कराचार्यके उदयकालमें देशमें सभी जगह बौद्धधर्मका प्रचार था। इसलिए गोविन्दाचार्यने शङ्कराचार्यको समर्थ जानकर उनको आदेश दिया कि तुम इस समय देशमें सब जगह घूम-घूमकर बौद्ध धर्मके स्थान पर सनातन वैदिक धर्मका प्रचार करो। गुरुवरकी इस आज्ञाको शिरसे लेकर शङ्कराचार्य देशमें घूमनेके लिए निकल गए और सब जगह वैदिक धर्मका प्रचार करना प्रारम्भ कर दिए।

प्रचारके समय अनेक बौद्ध पण्डितोंके साथ इनके अनेक शास्त्रार्थ हुए। परन्तु शास्त्रार्थमें इनके सामने कोई ठहर नहीं सका। इनकी असाधारण विद्वत्ता और विलक्षण वाक्पटुताको देखकर सभी विपक्षी हतप्रभ और पराजित हो गए और इस प्रकार इस महात्माने पूरे देशमें लुप्त हो रहे सनातन धर्मका फिरसे महान प्रचार किया। इसीलिए ये सनातन वैदिक धर्मके उद्धारक और प्रचारक माने जाते हैं।

भगवान शङ्कराचार्यने वैदिक धर्मके सिद्धान्तोंकी स्थापनाके लिए और विपक्षियोंके खण्डनके लिए अनेक ग्रन्थरत्नोंकी रचनाकी। उनमें ब्रह्मसूत्रका शारीरिक भाष्य, गीताका भाष्य और

उपनिषदां च भाष्यम् इति इमानि पुस्तकानि विशेषरूपेण मान्यानि प्रसिद्धानि च सन्ति। एतदतिरिक्तम् अपराणि अपि बहूनि पुस्तकानि लिखितवान् येषां विद्वत्समाजे सुमहान् आदरः वर्तते। अथ च— आचार्यः न केवलं स्वजीवनकाले एव वैदिकधर्मस्य प्रचारं कृतवान् प्रत्युत तस्य सततप्रचाराय संरक्षणाय च तिसृषु दिक्षु चतुरः मठान् अपि स्थापितवान्। तेषु उत्तरस्यां दिशि वदरिकाश्रमे जोशीमठः, पूर्वस्यां दिशि जगन्नाथपुर्यां गोवर्धनमठः पश्चिमायां दिशि द्वारिकायां शारदामठः तथा दक्षिणस्यां दिशि शृङ्गेरीमठः वर्तते। अद्यापि इमे मठाः स्वस्वस्थाने विराजन्ते तथा एषाम् अधीश्वराः (उत्तराधिकारिणः) शङ्कराचार्याः उच्यन्ते।



महाकविः कालिदासः

मालवा राज्यस्य अधिपतिः महाराजः विक्रमादित्यः महान् प्रतापी राजा आसीत्। स यथा शूरः वीरः पराक्रमी च आसीत् तथैव विद्वान्, गुणज्ञः तथा गुणिनाम् आश्रयदाता अपि आसीत्। अस्य राजधानी उज्जयिनी नगरी आसीत्। अस्य राजसभायां नव सुप्रसिद्धाः कवयः आसन्। ते एव नव कवयः "नव रत्न" नाम्रा संस्कृत-

पनिषदोंका भाष्य, ये पुस्तकें विशेष रूपसे मान्य और प्रसिद्ध । इसके अतिरिक्त और भी बहुत पुस्तकों को लिखा जिनका द्वत्समाजमें महान आदर है। और इसके अतिरिक्त—आचार्यने केवल अपने जीवनकालमें ही वैदिकधर्मका प्रचार किया प्रत्युत सके निरन्तर प्रचार और संरक्षणके लिये चारो दिशाओंमें चार ठोंकी भी स्थापना की। उनमें उत्तरमें वदरिकाश्रममें जोशीमठ, रब दिशामें जगन्नाथपुरीमें गोवर्धनमठ, पश्चिम दिशामें द्वारिकामें ारदामठ, तथा दक्षिण दिशामें शृङ्गेरीमठ है। आज भी ये मठ पने-अपने स्थान पर विद्यमान हैं, और इनके अधीश्वर उत्तराधिकारी) शङ्कराचार्य कहे जाते हैं।



महाकवि कालिदास

मालवा राज्यके अधिपति महाराज विक्रमादित्य महान तापी राजा थे। वे जिस प्रकार शूर, वीर और पराक्रमी थे सी प्रकार विद्वान्, गुणज्ञ और गुणियोंके आश्रयदाता भी थे। नकी राजधानी उज्जयिनी थी। इनकी राजसभामें नव (९) प्रसिद्ध कवि थे। वे ही नव कवि ''नवरत्न''के नामसे संस्कृत-

साहित्ये विख्याताः सन्ति। तेषु एव नवकविषु एकः महाकविः कालिदासः आसीत् यस्य इयं कथा लिख्यते।

अयं जात्या ब्राह्मणः आसीत्। अस्य जन्मभूमिः कश्मीरदेशे आसीत् इति बहूनां विदुषां मतं वर्तते। परन्तु अयं बाहुल्येन उज्जयिनीनगरे एव निवसति स्म। अयं बाल्यकाले महान् अशिक्षितः तथा मूढमतिः आसीत्। परन्तु दैवयोगात् अयमेव एतादृशः महाकविः सञ्जातः यस्य कीर्तिपताका अद्यापि देशे विदेशे सर्वत्र विद्योतमाना वर्तते। अस्य विद्याप्राप्तेः कथा ईदृशी वर्तते—

राज्ञः शारदानन्दस्य विद्योत्तमा अतिरूपवती, महागुणवती महापण्डिता च कन्या आसीत्। तस्याः ईदृशी प्रतिज्ञा आसीत् यत् यः मां शास्त्रार्थे पराजितां करिष्यति तेन एव सह अहं विवाहं करिष्यामि। तस्याः इमां प्रतिज्ञां श्रुत्वा अनेके पण्डिताः समागताः, शास्त्रार्थं च ते कृतवन्तः। परं सर्वे अपि ते तया पराजिताः। एकः अपि विजयी न बभूव। एतेन पण्डितानां महान् अपमानः अभूत्। अतः सर्वेऽपि पराजिताः पण्डिताः अपमानेन दुःखिता भूत्वा एकेन महामूर्खेण सह तस्याः विवाहं कारयितुं निश्चयं कृतवन्तः।

स्वनिश्चयानुसारं ते एकस्य महामूर्खस्य अन्वेषणाय वहिःनिर्गताः। किञ्चिद् दूरं गत्वा ते एकं जनं ददृशुः। स वृक्षस्य यस्याः शाखायाः उपरि उपविष्टः आसीत् ताम् एव शाखां छिनत्ति स्म।

साहित्यमें विख्यात हैं। उन्हीं नव कवियोंमें एक महाकवि कालिदास भी थे जिनकी यह कथा लिखी जा रही है।

ये जातिसे ब्राह्मण थे। इनकी जन्मभूमि कश्मीर देशमें थी—ऐसा बहुत विद्वानोंका मत है। लेकिन ये अधिक रूपसे उज्जयिनीमें ही रहते थे। ये बचपनमें महान अशिक्षित और मूढ़मतिके थे। परन्तु दैवयोगसे ये ही ऐसे महाकवि हुए जिनकी कीर्तिपताका आज भी देश-विदेशमें सब जगह लहर रही है। इनकी विद्याप्राप्ति की कथा इस प्रकार है—

राजा शारदानन्दकी पुत्री विद्योत्तमा बहुत रूपवती, महान गुणवती और महापण्डिता कन्या थी। उसकी ऐसी प्रतिज्ञा थी कि जो मुझे शास्त्रार्थमें पराजित करेगा उसी के साथ मैं विवाह करूँगी। उसकी इस प्रतिज्ञाको सुनकर अनेक पण्डित आए और उन्होंने शास्त्रार्थ किया। किन्तु वे सभी उससे पराजित हो गए। एक भी विजयी नहीं हुआ। इससे पण्डितोंका बहुत अपमान हुआ। इसलिए सभी हारे हुए पण्डितोंने अपमानसे दुःखित होकर एक महामूर्खके साथ उसका विवाह करानेका निश्चय किया।

अपने निश्चयके अनुसार वे एक महामूर्खकी खोजमें बाहर निकल गए। कुछ दूर जाकर उन लोगोंने एक आदमीको देखा। वह वृक्षकी जिस शाखा पर बैठा था उसी शाखाको काट रहा था।

तं दृष्ट्वा ते विचारयामासुः। सफलः अस्माकं मनोरथः। अयमेव महामूर्खः अस्ति। महामूर्खं विहाय कः अन्यः जनः ताम् एव शाखां छेत्स्यति यस्याः उपरि स स्वयम् उपविष्टः स्यात्। ते तम् आहूतवन्तः कथितवन्तः च। भद्र! त्वम् अस्माभिः सह चल। वयं तव विवाहं राजकन्यया सह कारयिष्यामः। परन्तु त्वं तत्र किञ्चिद् वदिष्यसि नहि। सङ्केतेन एव सर्वाः वार्ताः करिष्यसि।

राजकन्यया सह आत्मनः विवाहसम्बन्धं श्रुत्वा स अत्यन्तं प्रसन्नमानसः सन् चचाल। पण्डिताः तं राजसभायां नीतवन्तः, उच्चासने च उपवेशितवन्तः। अनन्तरं ते राजपुत्रीम् अवोचन्—अयं महान् पण्डितः अस्ति। किन्तु इदानीं मौनव्रतं धारयति। अतः सङ्केतेन एव शास्त्रार्थं करिष्यति। यदि तव इच्छा साहसं च वर्तते तर्हि अनेन सह शास्त्रार्थं कुरु। विद्योत्तमा तेन सह संकेतेन एव शास्त्रार्थं कर्तुं स्वीकृतवती। उभौ अपि शास्त्रार्थाय सन्नद्धौ जातौ परस्पराभिमुखं च उपविविशतुः।

ततः विद्योत्तमा—एकः एव ईश्वरः अस्ति इति अभिप्रायेण एकाम् अङ्गुलिं दर्शयामास। इदं दृष्ट्वा स मूर्खः ज्ञातवान् यत् इयं मम एकं नेत्रं स्फोटयितुं कथयति! ततः स "अहं तव उभे अपि नेत्रे स्फोटयिष्यामि" इति मनसि निधाय द्वे अङ्गुली अदर्शयत्। अनन्तरं सर्वे पण्डिताः तस्य मूर्खस्य पक्षपातं कृत्वा विद्योत्तमा

उसको देखकर उन लोगोंने सोचा। हमलोगोंका मनोरथ सफल हो गया। यही महामूर्ख है। महामूर्खको छोड़कर दूसरा कौन आदमी जिस पर बैठा है उसी शाखाको काटेगा। उन्होंने उसीको बुलाया और कहा—भद्र! (भले आदमी) तुम हमलोगोंके साथ चलो। हम लोग तुम्हारा विवाह राजाकी कन्याके साथ करायेगें। परन्तु तुम वहाँ कुछ बोलना नहीं। सङ्केतसे ही सभी बातें करना।

राजाकी कन्यासे अपना विवाह-सम्बन्ध सुनकर वह अत्यन्त प्रसन्नचित होकर चल दिया। पण्डित उसको राजसभामें ले गए और ऊँचे आसन पर बैठा दिए। इसके बाद वे राजाकी पुत्रीसे बोले- ये बहुत बड़े पण्डित हैं। किन्तु इस समय मौनव्रत धारण किये हैं। इसलिए सङ्केतसे ही शास्त्रार्थ करेंगे। यदि तुम्हारी इच्छा और साहस है तो इनके साथ शास्त्रार्थ करो। विद्योत्तमाने उनके साथ संकेत से ही शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। दोनों शास्त्रार्थके लिए तैयार हो गए और आमने-सामने बैठ गए।

तब विद्योत्तमाने—एक ही ईश्वर है इस अभिप्रायसे एक ऊँगली दिखाई। यह देखकर उस मूर्खने समझा कि यह मेरी एक आँख फोड़नेके लिए कह रही है। तब उसने "मैं तुम्हारी दोनों आँखें फोड़ दूँगा" ऐसा मनमें करके दो ऊँगली दिखाई। इसके बाद सभी पण्डितोंने उस मूर्खका पक्षपात करके विद्योत्तमा

पराजिता इति घोषयामासुः तस्य च महामूर्खस्य तया सह विवाहं कारयामासुः।

एकदा राजभवने रात्रौ तौ उभौ अपि शयानौ आस्ताम्। तस्मिन् एव समये एक उष्ट्रः महाशब्दं चकार। तस्य शब्दं श्रुत्वा विद्योत्तमा कालिदासं पप्रच्छ, कस्य अयं शब्दः? ततः स उट्र उट्र इति उवाच न तु उष्ट्र इति। एतेन राजपुत्री तं वस्तुतः मूर्खं ज्ञात्वा अतीव दुःखिता बभूव। अन्ते च क्रोधेन सा तं मूर्खं गृहात् निस्सारयामास।

स मूर्खः अपि अनया घटनया अति दुःखितः लज्जितश्च बभूव। अनेन अपमानेन स पूर्वं तु आत्मघातम् एव कर्तुं निश्चयं चकार परन्तु पश्चात् किञ्चिद् विचार्य भगवत्याः काल्याः आराधने संलग्नः जातः। तस्य आराधनेन सन्तुष्टा भगवती तस्मै वरं दत्तवती। तेन तस्य विद्यासिद्धिः सञ्जाता। स शीघ्रम् एव महापण्डितः महाकविश्च भूत्वा कालिदासः इति नाम्ना प्रसिद्धः बभूव।

सिद्धेः पश्चात् स यदा गृहं प्रति निवृत्तः तदा गृहस्य कपाटः पिहितः आसीत्। स कपाटस्य उद्घाटनाय विद्योत्तमां संस्कृतभाषायां प्रोवाच—"आर्ये! अनावृत-कपाटं द्वारं देहि"। ततः विद्वत्तमा तस्य मुखात् ईदृशं शुद्धं भावपूर्णं च वाक्यं श्रुत्वा प्रसन्नहृदया सती अवोचत्-अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः? ततः कालिदासः

हार गयी'' ऐसी घोषणा कर दी और उस महामूर्खका इसके साथ विवाह करा दिया।

एक बार राजभवनमें दोनों रात्रिमें सो रहे थे। उसी समय एक ऊँट जोरसे बोला। उसकी आवाज सुनकर विद्योत्तमाने कालिदाससे पूछा—यह किसकी आवाज है? तब उसने उट्र-उट्र ऐसा कहा, उष्ट्र नहीं! इससे राजपुत्री उसको वस्तुतः मूर्ख जानकर बहुत दुःखित हुयी और अन्तमें क्रोधसे उसने उस मूर्खको घरसे निकाल दिया।

वह मूर्ख भी इस घटनासे बहुत दुःखित और लज्जित हुआ। इस अपमानसे पहले तो उसने आत्मघात ही करना चाहा परन्तु बादमें कुछ सोचकर भगवती कालीकी आराधनामें लग गया। उसकी आराधनासे सन्तुष्ट भगवतीने उसे वर दिया। उससे उनकी विद्याकी सिद्धि हो गई। वे शीघ्र ही महापण्डित और महाकवि होकर कालिदासके नामसे प्रसिद्ध हुए।

सिद्धिके बाद जब वे घरको लौटे तब घरका दरवाजा बन्द था। उन्होंने दरवाजा खोलनेके लिए विद्योत्तमासे संस्कृत भाषामें कहा—आर्ये! दरवाजेकी केवाड़ी खोलो। तब विद्योत्तमा उनके मुखसे ऐसा शुद्ध और भावपूर्ण वाक्य सुनकर प्रसन्नहृदयसे बोली—है कुछ वाणीमें विशेषता। तब कालिदासने

उपर्युक्त-वाक्यस्य एकम् एकं पदं गृहीत्वा त्रीणि महाकाव्यानि रचयामास। "अस्ति" पदेन कुमारसम्भवं महाकाव्यम्, 'कश्चित्' पदेन मेघदूतं नाम खण्डकाव्यं तथा "वाग्" इति पदेन रघुवंश-महाकाव्यम्। ततः पत्युः ईदृशेन अप्रतिमेन पाण्डित्येन विद्योत्तमा परमां प्रसन्नतां प्राप्तवती।

इयम् एव कालिदासस्य लोकप्रसिद्धा कथा अस्ति। इमानि त्रीणि काव्यानि विहाय अयं महाकविः अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा मालविकाग्निमित्रम् इति त्रीणि नाटकानि अपि रचितवान्। एतदतिरिक्तम् एकम् "ऋतुसंहार" नामकं मनोहरं खण्डकाव्यम् अपि तस्य प्रसिद्धं वर्तते। एषु ग्रन्थेषु अभिज्ञानशाकुन्तलं नाम नाटकं संस्कृत नाटकेषु सर्वश्रेष्ठं नाटकं वर्तते। अतः एव पण्डितसमाजे इयं प्रसिद्धिः वर्तते—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्रापि च शकुन्तला।



उक्त वाक्यके एक-एक पदको लेकर तीन महाकाव्योंको रच। अस्ति पदसे कुमारसम्भव महाकाव्यको, कश्चित् पदसे मेघदूत नामक खण्डकाव्यको तथा वाग् पदसे रघुवंश महाकाव्यको। उसके बाद पतिके ऐसे अप्रतिम पण्डित्यसे विद्योत्तमा बहुत प्रसन्न हुई।

यही कालिदासकी लोक-प्रसिद्ध कथा है। इन तीन काव्योंको छोड़कर इस महाकविने अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय, और मालविकाग्निमित्र इन तीन नाटकोंकी भी रचनाकी है। एक दूसरा ऋतुसंहारनामक मनौहर खण्डकाव्य भी उनका द्ध है। इन ग्रन्थोंमें अभिज्ञानशाकुन्तल नामक नाटक संस्कृत ।टकोंमें सर्वश्रेष्ठ नाटक है। इसीलिए पण्डित समाजमें यह प्रसिद्धि है—

काव्योंमें नाटक रमणीय होता है और उसमें भी शकुन्तला नाटक अति रमणीय है।



महाराणा प्रतापः

मुगल-महीपतिषु सम्राट् "अकबरः" महान् प्रतापी सम्राट् बभूव। स स्वेन वलेन स्वेन प्रभावेण च सर्वान् अपि हिन्दु-नरपतीन् स्व-वशीभूतान् अकरोत्। परन्तु मेवाडदेशस्य केशरी राणा उदयसिंहः तस्य अधीनतां न स्वीचकार। अनेन कारणेन कुपितः अकबरः मेवाड़देशस्य उपरि एकदा आक्रमणं कृतवान्। तस्य आक्रमणेन राणा उदयसिंहः राजधानीं चित्तौडं परित्यज्य पलायितः। उदयसिंहे पलायिते अकबरः चित्तौडनगरं स्वायत्तीकृतवान्। ततः राणा उदयसिंहः एकाम् अन्यां राजधानीं निर्मिमाय तथा तस्याः उदयपुरम् इति नाम कृतवान्।

महाराणाप्रतापः अस्य एव मेवाडमहीपतेः राणा उदयसिंहस्य पुत्रः आसीत्। अयम् अपि स्वपित्रा सदृशः एव विशालकायः वीरः पराक्रमी साहसी च आसीत्। स्वपितरि दिवंगते अयं राज्यसिंहासनम् आरुरोह। अनन्तरम् आत्मनः प्रियां राजधानीं शत्रु-हस्त-गतां दृष्ट्वा अमर्ष-पूरितः महाराणा प्रतापः प्रतिज्ञां कृतवान् यत् अहं यावत् चित्तौडगढ़ं न जेष्यामि तावत् अहं पत्रे एव भोजनं करिष्यामि तथा भूमितले एव शयनं करिष्यामि। स आजीवनं अस्याः प्रतिज्ञायाः विचलितः न बभूव।

महाराणा प्रताप

मुगल- महीपतियोंमें सम्राट् ''अकबर'' महान प्रतापी सम्राट् हुआ। उसने अपने बल और अपने प्रभावसे सभी हिन्दु नरपतियोंको अपने वशमें कर लिया था। किन्तु मेवाड़ देशके केशरी राणा उदयसिंहने उसकी अधीनताको स्वीकार नहीं किया। इस कारणसे कुपित अकबरने मेवाड़ देशके ऊपर एकबार आक्रमण किया। उसके आक्रमणसे राजा उदयसिंह राजधानी चित्तौड़ छोड़कर भाग गये। उदय-सिंहके भाग जानेपर अकबरने चित्तौड़को अपने अधीन कर लिया। अकबरके द्वारा चित्तौड़को अपने वशमें कर लेनेपर राणा उदय-सिंहने एक दूसरी राजधानी बनाई और उसका नाम उदयपुर रखा।

महाराणा प्रताप इसी मेवाड़के अधिपति राणा उदयसिंहके पुत्र थे। ये भी अपने पिताके सदृश ही विशाल शरीर वाले, वीर, पराक्रमी और साहसी थे। अपने पिताके दिवंगत हो जाने पर ये राज्य-सिंहासन पर बैठे। उसके बाद अपनी प्रिय राजधानीको शत्रुके हाथमें देखकर अमर्षसे महाराणा प्रतापने प्रतिज्ञा की कि मैं जब तक चित्तौड़गढ़को नहीं जीत लूँगा तब तक पत्तेमें ही भोजन करूगाँ तथा जमीन पर ही शयन करूँगा। वे आजीवन इस प्रतिज्ञासे विचलित नहीं हुए।

राजा मानसिंहः अकबरस्य अतितरां प्रियः तथा सहायकः आसीत्। स एकदा परिभ्रमन् प्रतापसिंहस्य गृहम् आगतः। महाराणा प्रतापः तस्य सत्काराय सर्वाणि अपि राजोचितानि उपकरणानि प्रस्तुतानि अकरोत् परन्तु तेन सह उपविश्य भोजनं कर्तुं न अङ्गीचकार। स स्वपुत्रम् अमरसिंहं मानसिंहस्य सत्कार-करणाय नियुक्तवान्। भोजन- समये उपस्थिते महाराणा प्रतापम् अनुपस्थितं दृष्ट्वा मान-सिंहः अमरसिंहं तस्य कारणं पृष्टवान्। अमरसिंहः अकथयत्—भवान् मुगलानां दासभूतः। अतः भवता सह उपविश्य भोजनकरणे महाराणा स्वजातेः मातृभूमेः च महान्तम् अपमानं मन्यते। अतः स भवता सह भोजनं न करिष्यति। इदं श्रुत्वा मानसिंहः अतीव कुपितः बभूव तथा भोजनम् अकृत्वा एव ततः अन्यत्र गमनाय प्रस्थानं चकार।

महाराणा - कृतेन अपमानेन क्रुद्धः मानसिंहः तस्य उपरि आक्रमण-करणाय अकबरं प्रेरयामास। ततः अकबरः प्रतापसिंहेन सह योद्धुं मानसिंहस्य सलीम-नामानं पुत्रं स्वसेनया सह प्रेषितवान्। "हल्दी घाटी" स्थाने उभयोः भीषणः सङ्ग्रामः अभूत्। तत्र एकदा मुगलसैनिकाः महाराणा प्रतापस्य उपरि आक्रमणं कृतवन्तः। इदं दृष्ट्वा प्रतापसिंहस्य एकः सेनापतिः तस्य राजच्छत्रं गृहीत्वा स्वयमेव धारितवान्।

राजा मानसिंह अकबरके अत्यन्त प्रिय तथा सहायक थे। वे एकबार घूमते हुए प्रतापसिंहके घर आए। महाराणाने उनके सत्कारके लिए सभी राजोचित उपकरणोंको प्रस्तुत किया। किन्तु उनके साथ बैठकर भोजन करना स्वीकार नहीं किया। उसने अपने पुत्र अमरसिंहको मानसिंहका सत्कार करनेके लिए नियुक्त किया। भोजनके समय महाराणा प्रतापको अनुपस्थित देखकर मानसिंहने अमरसिंहसे उसका कारण पूछा। अमरसिंहने कहा—आप मुगलोंके दास हैं। इसलिए आपके साथ बैठकर भोजन करनेमें महाराणा अपनी जाति और मातृभूमिका महान अपमान मानते हैं। इसलिए वे आपके साथ भोजन नहीं करेंगे। यह सुनकर मानसिंह बहुत कुपित हुए तथा भोजन न करके वहाँ से अन्यत्र जानेके लिए प्रस्थान कर दिये।

महाराणा द्वारा किए गये अपमानसे क्रुद्ध मानसिंहने उनके ऊपर आक्रमण करनेके लिए अकबरको प्रेरित किया। तब अकबरने प्रतापसिंहसे युद्ध करनेके लिए मानसिंहके सलीम नामक पुत्रको अपनी सेनाके साथ भेजा। हल्दी घाटी नामक स्थान पर दोनोंमें भीषण संग्राम हुआ। वहाँ एकबार मुगल सैनिकोंने महाराणाप्रतापके ऊपर आक्रमण किया। यह देखकर प्रतापसिंहके एक सेनापतिने उनके राजछत्रको स्वयं ले लिया।

ततः तम् एव प्रतापसिंहं ज्ञात्वा मुगलसैनिकाः तम् एव मारितवन्तः। महाराणा स्वकीयं वीरघोटकं चेतकं आरूढः सन् अन्यत्र विनिर्गतः।

गच्छन्तं प्रतापसिंहं दृष्ट्वा ''अयम् एव महाराणा'' इति तं परिचित्य पुनरपि मुगलसैनिकाः तस्य हननाय तम् अनुजग्मुः। परन्तु तस्य भ्राता राणा शक्तसिंहः तान् पृष्ठपतितान् मुगल-सैनिकान् हत्वा प्रतापसिंहं रक्षितवान्। परं तस्य चेतकनामा युद्धकला-कुशलः घोटकः शत्रुभिः मारितः। अस्मिन् अवसरे वाहनहीनः महाराणा भ्रातुः शक्तसिंहस्य अश्वम् आरुह्य यथा कथञ्चित् स्वप्राणरक्षां कृतवान्।

महाराणा प्रतापसिंहस्य देशभक्तेः स्वाभिमानस्य च इयं कथा अद्यापि भारतीयजनेषु अतिश्रद्धया कथ्यते श्रूयते च।

*

भक्तकविः गोस्वामी तुलसीदासः

अस्माकं देशे तुलसीकृत-रामायणस्य महान् प्रचारः अस्ति। तत्रापि उत्तरभारते विशेषरूपेण। ग्रामे-ग्रामे अस्य गानं भवति, गृहे गृहे च पाठः भवति। ये संस्कृतं न जानन्ति ते अपि तुलसीकृत

तब उसको ही प्रतापसिंह जानकर मुगल सैनिकों ने उसे ही मार डाला और महाराणा अपने वीर घोड़े चेतक पर चढ़कर अन्यत्र निकल गये।

जाते हुए प्रतापसिंहको देखकर "यही महाराणा है" ऐसा उनको पहचानकर पुनः मुगल सैनिकोंने उन्हें मारनेके लिए उनका पीछा किया। किन्तु उनके भाई राणा शक्तसिंह ने पीछे पड़े मुगल सैनिकोंको मारकर महाराणा प्रतापसिंहको बचा लिया। लेकिन उनका चेतक नामक युद्धकलामें कुशल घोड़ा मारा गया। इस अवसर पर वाहनहीन महाराणाने अपने भाई शक्तसिंहके घोड़े पर चढ़कर जिस किसी प्रकारसे अपने प्राणकी रक्षाकी।

महाराणा प्रतापसिंहकी देशभक्ति एवं स्वाभिमानकी यह कथा आज भी भारतीय जनोंमें अत्यन्त श्रद्धासे कही और सुनी जाती है।



भक्तकवि गोस्वामी तुलसीदास

हमारे देशमें तुलसीकृत रामायणका महान प्रचार है। उसमें भी उत्तरभारतमें विशेष रूपसे। गाँव गाँवमें इसका गान होता है और घर-घरमें पाठ होता है। जो संस्कृत नहीं जानते हैं वे भी तुलसीकृत

रामायणं पठित्वा पण्डिताः कथावाचकाः उपदेशकाः धर्मज्ञाश्च जायन्ते। ईदृशः एकः अपि भारतीयः न भविष्यति यः अस्य ग्रन्थरत्नस्य नाम न श्रुतवान् भवेत्।

अस्य एव ग्रन्थरत्नस्य रचयितुः नाम गोस्वामी तुलसीदासः अस्ति। एतस्य महात्मनः जन्म षोडश-शताब्द्याः उत्तरार्धे "वांदा" मण्डलस्य राजापुरनामके ग्रामे एकस्य सरयूपारीणब्राह्मणस्य गृहे अभूत्। अस्य पितुः नाम आत्माराम दूबे तथा मातुः नाम तुलसी आसीत्। एतस्य गुरोः नाम नरहरिदासः इति आसीत् यस्य सकाशम् अयं विद्याध्ययनं कृतवान्।

विद्याध्ययनानन्तरं "बुद्धिमती" नाम्न्या कन्यया सह अस्य विवाहः अभूत्। गोस्वामिजीवस्य गृहस्थदशायां स्वपत्न्याः उपरि महती आसक्तिः आसीत्। एकदा सा एनम् अकथयित्वा एव स्वकीयं पितृगृहं गतवती। ततः स तस्याः वियोगेन अतीव व्याकुलः बभूव। अन्ते च विरहातुरः भूत्वा भार्यायाः अवलोकनाय स्वयमेव श्वसुरालयं गतवान्। परन्तु बुद्धिमती तस्य तत्र स्वयं गमनं न रोचयामास। सा तं गर्हयन्ती उवाच—यथा भवान् मम अस्थि-मांस-मये विनश्वरे शरीरे स्नेहं करोति तथैव यदि परमेश्वरे स्नेहम् अकरिष्यत् तर्हि भवतः महत् कल्याणम् अभविष्यत् तथा जननमरणाभ्यां मुक्तिः अपि प्राप्स्यत।

स्वपत्न्याः इदं निष्ठुरं वचनं श्रुत्वा तुलसीदासस्य हृदये

ामायणको पढ़कर पण्डित, कथावाचक, उपदेशक और धर्मज्ञ हो जाते हैं। ऐसा कोई भारतीय नहीं होगा जिसने इस ग्रन्थरत्नका नाम न सुना हो।

इसी ग्रन्थरत्नके रचयिताका नाम गोस्वामी तुलसीदास है। इस महात्माका जन्म सोलहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें बाँदा जिलेके राजापुर नामक गाँवमें एक सरयूपारीण ब्राह्मणके घरमें हुआ था। इनके पिताका नाम आत्माराम दूबे तथा माताका नाम तुलसी था। इनके गुरुका नाम नरहरिदास था जिनके पास इन्होंने विद्याध्ययन किया था।

विद्याध्ययनके बाद बुद्धिमती नामक कन्याके साथ इनका विवाह हुआ। गोस्वामीजीकी गृहस्थ दशामें अपनी पत्नीके ऊपर बहुत आसक्ति थी। एकबार वह इनसे कहे बिना ही अपने पिताके घर चली गयी। उसके बाद ये उसके वियोगसे बहुत व्याकुल हो गये और अन्तमें विरहसे आतुर होकर पत्नीको देखनेके लिए स्वयं ससुराल चले गए। किन्तु बुद्धिमतीको उनका वहाँ जाना अच्छा नहीं लगा। वह उनकी निन्दा करती हुई बोली—जिस प्रकार आप मेरे हड्डी-मांसमय विनश्वर शरीर पर स्नेह करते हैं उसी प्रकार यदि परमेश्वरमें स्नेह करते तो आपका बहुत बड़ा कल्याण होता और जन्म एवं मरणसे मुक्ति भी मिल जाती।

अपनी पत्नीका यह निष्ठुर वचन सुनकर तुलसीदासके हृदयमें

तां प्रति महती विरक्तिः सञ्जाता। अनन्तरं स तया मुहुर्मुहुः अनुनीयमानः अपि तस्याः समीपे स्थातुं न इयेष। स काश्यां गत्वा तत्र च श्रीरामानन्दस्य शिष्यः बभूव तथा भगवद्भजने, मनने, चिन्तने, अध्ययने, सत्सङ्गे च संलग्नः भूत्वा साधुवत् जीवनं यापयितुं प्रारेभे। काश्यां यस्मिन् स्थाने गोस्वामिजीवः निवसति स्म तत् स्थानम् अधुनाऽपि अस्सी – घट्टे "तुलसीमन्दिरम्" इति नाम्ना सुप्रसिद्धं वर्तते। तस्मिन् स्थाने चिह्नरूपेण गोस्वामिनः तुलसीदासस्य द्वे पादुके अद्यावधि सुरक्षिते वर्तेते। बहवः भक्तजनाः अस्य स्थानस्य दर्शनाय निरन्तरं तत्र गच्छन्ति।

महात्मा गोस्वामिजीवः संस्कृतभाषायाः तथा मातृभाषायाः महान् पण्डितः कविश्च आसीत्। अनेन अनेके पद्यमयाः ग्रन्थाः रचिताः सन्ति येषु रामायणं सर्वश्रेष्ठं सर्वप्रसिद्धं सर्वप्रियं च ग्रन्थरत्नं वर्तते। रामायणस्य अवलोकनेन ज्ञायते यत् तत्त्वज्ञाने, धर्मशास्त्रे, राजनीतौ, काव्यकलायां च अस्य कीदृशं विशिष्टं ज्ञानम् आसीत्। रामायणं रचयित्वा गोस्वामिजीवः हिन्दुजातेः महान्तम् उपकारं कृतवान्।

अयं हनूमतः तथा भगवतः रामचन्द्रस्य परमः भक्तः आसीत्। अनेन हनूमतः कृपया रामचन्द्रस्य साक्षात् दर्शनं कृतम् इत्यपि अनेके

उसके प्रति बहुत बड़ी विरक्ति हो गयी। उसके बाद वे उसके बार-बार विनती करने पर भी उसके पास रहना नहीं चाहे। उन्होंने काशीमें जाकर वहाँ श्रीरामानन्दका शिष्य बनकर भगवानके भजनमें, मननमें, चिन्तनमें, अध्ययनमें और सत्संगमें संलग्न होकर साधुके समान जीवन बिताना प्रारम्भ कर दिया। काशीमें जिस स्थान पर गोस्वामीजी रहते थे वह स्थान आज भी अस्सी घाट पर "तुलसी मन्दिर"के नामसे सुप्रसिद्ध है। उस स्थान पर चिह्न रूपसे गोस्वामी तुलसीदास की दो पादुकायें आज भी सुरक्षित हैं। बहुत भक्तलोग इस स्थानके दर्शनके लिए हमेशा वहाँ जाते हैं।

महात्मा गोस्वामीजी संस्कृतभाषाके और मातृभाषाके बहुत बड़े पण्डित और कवि थे। इन्होंने अनेक पद्यमय ग्रन्थोंकी रचनाकी है जिनमें रामायण सर्वश्रेष्ठ, सर्वप्रसिद्ध और सर्वप्रिय ग्रन्थरत्न है। रामायणको देखनेसे ज्ञात होता है कि तत्त्वज्ञानमें, धर्म-शास्त्रमें, राजनीतिमें और काव्यकलामें इनका कैसा विशिष्ट ज्ञान था। रामायणकी रचना करके गोस्वामीजीने हिन्दुजातिका महान उपकार किया है।

ये हनुमानजी तथा भगवान रामचन्द्रजीके परमभक्त थे। इन्होंने हनुमानजीकी कृपासे रामचन्द्रजीका साक्षात् दर्शन किया, ऐसा कई

जनाः कथयन्ति। अस्य सप्तदश शताब्द्याः उत्तरार्धे वैकुण्ठप्राप्तिः अभूत् यथा निम्नलिखितेन पद्येन ज्ञातं भवति—

संवत् सोरह सौ असी असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर॥



कविसम्राट् रवीन्द्रनाथठाकुरः

वर्तमाने समये भारतवर्षे यावन्तः। जगत्प्रसिद्धाः महापुरुषाः अभूवन् तेषु रवीन्द्रनाथठाकुरस्य एकं विशिष्टं स्थानं वर्तते। अस्य महानुभावस्य जन्म १८१६ तमे ईशवीये वत्सरे कलिकात्ता नगरे अभूत्। एतस्य पिता महर्षिः देवेन्द्रनाथ ठाकुरः वङ्गेषु अतीव प्रतिष्ठितः विद्वान् महात्मा च आसीत्। अस्य माता अपि कुलीना साध्वी सुयोग्या सर्वगुणोपेता च आसीत्। अतः उभयोः अपि मातापित्रोः सर्वगुण-सम्पन्नतया रवीन्द्रनाथ ठाकुरः अपि सर्वगुणोपेतः महाविद्वान् विश्व-विश्रुतश्च बभूव।

अस्य माता बाल्यकाले एव स्वर्गं गता। अतः महर्षेः

लोग कहते हैं। इनको सतरहवीं शताब्दीके उत्तरार्धमें बैकुण्ठकी प्राप्ति हुई जैसा कि निम्नलिखित पद्यसे ज्ञात होता है—

संवत् सोरह सौ असी असी गंगके तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी तुलसी तज्यो शरीर॥



कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ ठाकुर

वर्तमान समयमें भारतमें जितने विश्वप्रसिद्ध महापुरुष हुए उनमें रवीन्द्रनाथ ठाकुरका एक विशिष्ट स्थान है। इस महानुभावका जन्म १८६१ ई० में कलकत्तामें हुआ था। इनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर बंगालमें बहुत प्रतिष्ठित विद्वान् और महात्मा थे। इनकी माताजी भी कुलीन, साध्वी और सभी गुणोंसे युक्त थीं। इसलिए माता-पिता दोनोंके सर्वगुणसम्पन्न होनेसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी सभी गुणोंसे युक्त, महाविद्वान् और विश्वमें प्रसिद्ध हुए।

इनकी माता बचपनमें ही स्वर्ग चली गयी। इसलिए महर्षि

देवेन्द्रनाथ ठाकुरस्य निरीक्षणे भृत्यजनाः एव अस्य लालनं पालनं च कृतवन्तः। ततः असौ पठनाय पाठशालायां प्रेषितः। परन्तु अस्य मनः पाठशालायां न लगति स्म। स शिक्षकाणां छात्रैः सह निष्ठुरं व्यवहारं दृष्ट्वा अन्यत्र एव पठितुं कामयामास। तस्य इमम् अभिप्रायं ज्ञात्वा तस्य पिता गृहे एव तस्य पठनाय व्यवस्थां चकार। अस्य बाल्यकालात् एव सङ्गीते, काव्ये, नाटके, चित्रकलायां तथा संस्कृतभाषायां स्वाभाविकी अभिरुचिः आसीत्। अनेन कारणेन अयं स्वल्पकाले एव एषु विषयेषु महतीं निपुणतां लब्धवान्। कवितानिर्माणे तु अयं तादृशीं योग्यतां दर्शितवान् यथा सर्वे तदानीन्तनाः वङ्गदेशीयाः विद्वांसः विस्मिताः अभूवन्। अस्मिन् समये रवीन्द्रनाथठाकुरः षोडशवर्षदेशीयः आसीत्।

स्वदेशे समुचितां शिक्षां लब्ध्वा अयं सप्तदशे वर्षे विदेशेषु शिक्षाग्रहणार्थं गतवान्। तत्र स लन्दननगरे एकं वर्षं स्थित्वा सुप्रसिद्ध-पण्डितस्य श्री ''जान मार्ले'' महोदयस्य सकाशे आङ्गल-साहित्यस्य अध्ययनं कृतवान्। बुद्धेः तीव्रतया अयम् आङ्गलसाहित्ये अपि महतीं योग्यतां लब्धवान्। विदेशे भ्रमणेन बहूनां विदुषां समागमेन च अस्य वाह्यज्ञाने बौद्धिके विकासे च महती अभिवृद्धिः बभूव।

त्रयोविंशतितमे वर्षे रवीन्द्रनाथ ठाकुरस्य विवाह-संस्कारः सम्पन्नः।

देवेन्द्रनाथ ठाकुरके निरीक्षण में नौकर लोगोंने ही इनका लालन और पालन किया। उसके बाद इन्हें पढ़ने के लिए पाठशालामें भेजा गया। किन्तु इनका मन पाठशालामें नहीं लगता था। वे शिक्षकोंका छात्रोंके साथ निष्ठुर व्यवहार देखकर दूसरी जगह ही पढ़ना चाहे। उनके इस अभिप्रायको जानकर उनके पिताजीने घरमें ही उनके पढ़नेके लिए व्यवस्था कर दी। इनकी बचपनसे ही संगीतमें, काव्यमें, नाटकमें, चित्रकलामें तथा संस्कृतभाषामें स्वाभाविक अभिरुचि थी। इस कारणसे इन्होंने थोड़े समयमें ही इन विषयोंमें महती निपुणता प्राप्त कर ली। कवितानिर्माणमें तो इन्होंने ऐसी योग्यता दिखायी जिससे सभी उस समयके वङ्गदेशीय विद्वान विस्मित हो गए। इस समय रवीन्द्रनाथ ठाकुर सोलह वर्षके थे।

अपने देशमें समुचित शिक्षा प्राप्त कर ये सतरहवें वर्षमें विदेशों में शिक्षा ग्रहण करनेके लिए गए। वहाँ उन्होंने लन्दनमें एक वर्ष रहकर सुप्रसिद्ध पण्डित श्री "जान मार्ले" महोदयके पास अंग्रेजी साहित्यका अध्ययन किया। बुद्धिकी तीव्रतासे इन्होंने अंग्रेजी साहित्यमें भी महती योग्यता प्राप्त की। विदेशमें घूमनेसे और अनेक विद्वानोंके सम्पर्कसे इनके वाह्यज्ञान और बौद्धिक विकासमें बड़ी अभिवृद्धि हुई।

२३वें वर्षमें रवीन्द्रनाथ ठाकुरका विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ।

स गृहस्थाश्रमं प्रविष्टः। ततः स पितुः आज्ञया ग्रामे स्थित्वा आत्मनः पैतृकसम्पत्तेः प्रबन्धकार्ये संलग्नः बभूव। परं तत्रापि तस्य अध्ययन-कार्ये बाधा न अभूत्। एतदतिरिक्तं ग्रामवासेन, ग्रामीणानां विविध-व्यवहार-दर्शनेन च तस्य लौकिके ज्ञाने अपि वृद्धिः अभूत् तथा ग्राम्यसंसारस्य नव-नवैः अनुभवैः स परिचितश्च जातः। एवं स पञ्चत्रिंश-वर्षपर्यन्तं विद्याव्यासङ्गेन सह गृहस्थकर्माणि अपि सफलतापूर्वकं सम्पादितवान्। एतस्मिन् गार्हस्थ्यजीवने एव रवीन्द्रनाथठाकुरः एतादृशीं मनोहारिणीं काव्य-रचनां कृतवान् यथा वङ्गीयः विद्वत्समाजः अतीव प्रभावितः जातः। तस्य कवितानाम् अनेके सङ्ग्रहाः अपि तस्मिन् काले एव पुस्तकाकारे प्रकाशिताः। कविसमाजे तासां कवितानां महान् समादरः बभूव।

अनन्तरं कतिपये काले व्यतीते एतस्य पत्नी पुत्रः पुत्री च सर्वे अपि एकैकशः दिवं गताः। अनया शोकपरम्परया तस्य जीवने विचित्रं परिवर्तनं जातम्। तस्मात् कालात् तस्य विचारधारा अधिकतरम् अध्यात्माभिमुखी बभूव। स चिरन्तन-सत्यतप्त्वानां चिन्तने तेषामेव कविताद्वारा प्रकाशने च समयं यापयितुम् आरेभे। अस्मिन् एव समये असौ "गीताञ्जलि" नामकं विश्वविश्रुतं पुस्तकं पूर्वं वङ्गभाषायां तदनु आङ्गलभाषायां च रचितवान्। एतत्पुस्तकस्य रचनायाः उपलक्षे अयम् "नोबेल"

। गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट हुए। उसके बाद वे पिताजीकी आज्ञासे गाँवमें
हकर अपनी पैतृक-सम्पत्तिके प्रबन्धकार्यमें लग गये। लेकिन वहाँ
ी उनके अध्ययनकार्यमें बाधा नहीं हुई। इसके अतिरिक्त गाँवमें
हनेसे और ग्रामीणोंके विविध व्यवहारको देखनेसे उनके लौकिक
ानमें भी वृद्धि हुई और गाँवके नये-नये अनुभवोंसे परिचित हो
ए। इस प्रकार उन्होंने ३५ वर्ष तक विद्याव्यसनके साथ गृहस्थके
ार्योंका भी सफलतापूर्वक सम्पादन किया। इस गार्हस्थ्य-जीवनमें
रवीन्द्रनाथ ठाकुरने ऐसे मनोहारी काव्योंकी रचना की जिससे
ंगीय विद्वत्समाज बहुत प्रभावित हुआ। उनकी कविताओंके अनेक
ंग्रह भी उसी समय पुस्तकोंके रूपमें प्रकाशित हुए। कवियोंके
ाजमें उन कविताओंका महान समादर हुआ।

उसके बाद कुछ समय बीत जाने पर इनकी पत्नी, पुत्र और
। एक-एक करके दिवंगत हो गये। इस शोक-परम्परासे उनके
ानमें विचित्र परिवर्तन हुआ। उस समयसे उनकी विचारधारा
दातर अध्यात्माभिमुखी हो गयी। वे हमेशा सत्य तत्त्वोंके
ानमें और कविता द्वारा उन्हीं के प्रकाशनमें समय बिताने लगे।
समय इन्होंने गीताञ्जलि नामक विश्वविश्रुत पुस्तकको पहले
ा भाषामें और उसके बाद अंग्रेजी भाषामें रचा। इस पुस्तककी
ाके उपलक्ष्यमें इन्होंने "नोवेल" नामक एक लाख रुपयेका

नामकं लक्षरूप्यात्मकं पुरस्कारं प्राप्तवान्। एतेन अस्य महाकवेः देशे विदेशेषु च महती प्रसिद्धिः बभूव। तदनन्तरं प्राच्य-पाश्चात्य-देशेषु अनेन अनेकवारं भ्रमणमपि विहितम्।

अयं महानुभावः यथा साहित्यस्य निर्माणे अपूर्वं कार्यं कृतवान् तथैव शिक्षायाः प्रचारे अपि। अयं महानुभावः स्वपित्रा स्थापिते "शान्तिनिकेतन" नामके आश्रमे विश्वभारतीनाम्ना एकं विद्यापीठम् अपि स्थापितवान्। अस्मिन् विद्यापीठे देशीयाः विदेशीयाश्च अनेके पारगामिनः विद्वांसः विविध-विषयाणां विविध-भाषाणां च अध्यापनं कुर्वन्ति। भारतस्य सुप्रसिद्धेषु विश्वविद्यालय-सदृशेषु विद्यापीठेषु अस्य विद्यापीठस्य विशिष्टं स्थानं वर्तते।

इदम् एव विश्वकवेः रवीन्द्रनाथठाकुरस्य संक्षिप्ततमं जीवन-चरितं वर्तते। एषः महानुभावः स्वविशालकायेन, दर्शनीयरूपेण आदर्शचरित्रेण, गम्भीरचिन्तनेन, द्विशताधिकानां पुस्तकानां लेखनेन, नावेलपुरस्कार-प्राप्त्या, विश्वभारतीस्थापनेन, देशविदेशे भ्रमणेन तथा अन्याभिश्च विविधविशिष्टताभिः अपूर्वं यशः अर्जितवान्। एषः महापुरुषः यां भारतभुवः सेवां कृतवान् यथा भारतीयानां मस्तकं समुन्नतं कृतवान् तत् भारतीये इतिहासे अ[illegible] अमरं च स्थास्यति।

*

ुरस्कार प्राप्त किया। इससे इस महाकवि की देश और विदेशमें बहुत प्रसिद्धि हुई। उसके बाद प्राच्य-पाश्चात्य देशोंमें इन्होंने अनेक बार भ्रमण भी किया।

इस महानुभावने जिस प्रकार साहित्यके निर्माणमें अपूर्व कार्य किया उसी प्रकार शिक्षाके प्रचारमें भी। इस महानुभावने अपने पिता द्वारा स्थापित शान्ति निकेतन नामक आश्रममें "विश्वभारती" नामसे एक विद्यापीठ भी स्थापित किया। इस विद्यापीठमें देशीय और विदेशीय अनेक पारगामी विद्वान विविध विषयोंका और विविध भाषाओंका अध्यापन करते हैं। भारतके सुप्रसिद्ध विश्वविद्यालय सदृश विद्यापीठोंमें इस विद्यापीठका विशिष्ट स्थान है।

यही विश्वकवि रवीन्द्रनाथठाकुरका अत्यन्त संक्षिप्त जीवन-चरित है। इस महानुभावने अपने विशाल शरीरसे, दर्शनीय रूपसे, आदर्श चरित्रसे, गंभीर चिन्तनसे, दो सौ से अधिक पुस्तकोंके लेखनसे, नोवेल पुरस्कारकी प्राप्तिसे, विश्वभारतीकी स्थापनासे, देश-विदेशमें भ्रमणसे और अन्य विभिन्न प्रकारकी विशेषताओंसे अपूर्व यशका अर्जन किया। इस महापुरुषने जो भारत भूमिकी सेवाकी और जिस प्रकार भारतीयोंका मस्तक समुन्नत किया वह भारतीय इतिहासमें अजर और अमर रहेगा।



राष्ट्रोद्धारकः महात्मा गान्धीः

अस्माकं देशः भारतं बहोः प्राचीनकालात् एव विश्वविख्यातानां महापुरुषाणां जन्मभूमिरूपे सुप्रसिद्धं वर्तते। अत्र रामः तथा कृष्णः, वाल्मीकिः तथा व्यासः, बुद्धः तथा महावीरः, शङ्करः तथा चैतन्यः तथा दयानन्द–विवेकानन्दादयः ईदृशाः महामानवाः जन्म गृहीतवन्तः येषां नाम्ना कर्मणा च सम्पूर्णं जगत् प्रभावितं वर्तते। एतादृशेषु एव महापुरुषेषु महात्मनः गान्धिमहोदयस्य गणना अस्ति यस्य अति संक्षिप्तः परिचयः अत्र उपन्यस्यते।

महात्मनः गान्धिनः जन्मभूमिः गुजरात प्रदेशस्य प्रसिद्धं पोरबन्दर नामकं नगरम् अस्ति। तत्रैव १७६९ तमे वत्सरे एकस्मिन् प्रतिष्ठिते परिवारे तस्य जन्म अभूत्। तस्मिन् समये अस्य पिता कर्मचन्द गान्धी राजकोटराज्यस्य प्रधानमन्त्री आसीत्। एतस्य कुलं वैष्णवधर्मस्य अनुयायि आसीत् अतः गान्धिजीवः बाल्यकालात् एव धार्मिकः तथा सदाचार-सम्पन्नः जनः आसीत्।

राष्ट्रोद्धारक महात्मा गान्धी

हम लोगोंका देश भारत बहुत प्राचीन कालसे ही विश्वमें विख्यात महान पुरुषोंकी जन्मभूमिके रूपमें सुप्रसिद्ध है। यहाँ राम और कृष्ण, वाल्मीकि और व्यास, बुद्ध और महावीर, शंकर और चैतन्य तथा दयानन्द और विवेकानन्द आदि ऐसे महामानवोंने जन्म लिया है जिनके नाम एवं कर्मसे सारा जगत प्रभावित हुआ है। ऐसे ही महापुरुषोंमें महात्मा गान्धीजीकी गणना है जिनका अति संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

महात्मा गान्धीकी जन्मभूमि गुजरात प्रदेशका प्रसिद्ध पोरबन्दर नामका नगर है। वहीं पर १७६९वें ई० वर्षमें एक प्रतिष्ठित परिवारमें इनका जन्म हुआ। उस समय इनके पिता कर्मचन्द गान्धी राजकोट राज्यके प्रधान मन्त्री थे। इनका कुल वैष्णव धर्मका अनुयायी था इसलिये गान्धीजी बचपनसे ही धार्मिक तथा सदाचारसम्पन्न व्यक्ति थे।

तदानीं समाजे बालविवाहस्य प्रथा प्रचलिता आसीत्। अतः गान्धिजीवस्य अपि विवाहः त्रयोदशे वर्षे एव कस्तूरबानामिकया कन्यया सह सम्पन्नः। विवाहानन्तरं मैट्रिकुलेशनपरीक्षाम् उत्तीर्य अयं वैरिस्टरी शिक्षाग्रहणार्यं इग्लैण्ड देशं गतः। तत्र चतुर्षु वर्षेषु इमां शिक्षां समाप्य अयं स्वदेशे राजकोटनगरे "वाक्कील"-कार्यं कर्तुं प्रारभत।

गान्धिजीवः वाक्कीलकार्यं कुर्वन् एकदा एकस्य अभि-योगस्य प्रसङ्गे अफ्रीकादेशं गतः। तत्र "डरवन" नगरस्य न्यायालये यदा गान्धीजीवः स्वपरम्परानुसारं शिरसि उष्णीषं बद्ध्वा गतः तदा तत्रत्यः न्यायाधीशः तस्य बहु अपमानं कृतवान् तथा उष्णीषस्य अवतारणाय अपि आज्ञापितवान्। तत्र पूर्वतः एव भारतीयाः अपमानिताः तिष्ठन्ति स्म। अतः भारतीयानाम् एतादृशम् अपमानं दृष्ट्वा गान्धी-जीवः नितान्तं दुःखितः बभूव तथा न्यायालयकार्यं परित्यज्य तत्रत्यानां भारतीयानां दशापरिवर्तनाय १८९४ तमे ई० वर्षे नेटाल इण्डियन कांग्रेस इति नाम्ना एकां संस्थां संस्थाप्य एकं सुमहत् क्रान्तिकार्यं कर्तुं प्रारभत। इदम् आसीत् गान्धिजीवस्य राजनीतौ प्रवशेस्य प्रथमं चरणम्।

तस्मिन् एव समये भारते अपि स्वराज्यप्राप्तये कांग्रेस सभा कार्यं करोति स्म। अतः गान्धिजीवः अफ्रीकातः निवृत्य भारतीय

उस समय समाजमें बालविवाहकी प्रथा प्रचलित थी। इसलिये गान्धीजीका भी विवाह तेरहवें वर्षमें ही कस्तूरबा नामक कन्याके साथ हो गया। विवाहके अनन्तर मैट्रिकुलेशन परीक्षा पासकर ये वैरिस्टरीकी शिक्षा प्राप्त करनेके लिये इंग्लैण्ड चले गये। वहाँ चार वर्षोंमें इस शिक्षाको समाप्त कर इन्होंने अपने देशमें राजकोटनगरमें वकालत करना प्रारम्भ किया।

गान्धीजी वकालतका काम करते हुए एकबार एक मुकदमेके कामसे अफ्रीका गये। वहाँ डरवन नगरके न्यायालयमें जब गान्धीजी अपनी परम्पराके अनुसार शिरपर पगड़ी बाँधकर गये तो वहाँके न्यायाधीशने उनका बहुत अपमान किया तथा पगड़ी उतारनेके लिये भी आदेश दिया। वहाँ पहलेसे ही भारतीय अपमानित रहा करते थे। अतः भारतीयोंका ऐसा अपमान देखकर गान्धीजी अत्यन्त दुःखित हुए और उन्होंने न्यायालयका काम छोड़कर १८९४वें वर्षमें वहाँके भारतीयोंकी दशामें परिवर्तन करनेके लिये नेटाल इण्डियन कांग्रेस इस नामसे एक संस्था स्थापित कर एक महान् क्रान्तिकारी काम करना प्रारम्भ किया। यह था गान्धीजीके राजनीतिमें प्रवेशका पहला चरण।

उसी समय भारतमें भी स्वराज्य प्राप्तिके लिये कांग्रेस सभा काम कर रही थी। इसलिये गान्धीजी अफ्रीकासे लौटकर भारतीय

काांग्रेससभायां सम्मिलितः बभूव। ततः आरभ्य देशस्य स्वतन्त्रतायै प्रधाननेतृ—रूपे महात्मा गान्धीजीवः यानि यानि कर्माणि कृतवान्, यानि यानि कष्टानि **सोढवान्** यथा च सत्यस्य तथा अहिंसायाः अद्भुतेन प्रयोगेण वैदेशिकशासनं समाप्य देशं पूर्णरूपेण स्वतन्त्रं कृतवान् तस्य कथा अति विस्तृता वर्तते तथा सर्वे देशवासिनः तत् सर्वं जानन्ति एव।

इदम् अपि सर्वेषां जनानां विदितं वर्तते यत् स्वतन्त्रताप्राप्ति-समये देशस्य हिन्दुस्तान-पाकिस्तानरूपे विभाजनं जातम्। अतः तस्मिन् समये देशे अनेकेषु स्थानेषु हिन्दू-मुस्लिम समाजे भयानकाः उपद्रवाः संघर्षाः तथा हत्याः संजाताः। परं तादृशे अशान्ति-मये समये अपि गान्धिजीवः शान्तिस्थापनार्थं महान्तं प्रयासं कृतवान् तथा मुस्लिमजनानां हितमेव कर्तुम् ऐच्छत्। अनेन एव कारणेन कुपितः भूत्वा एकः नाथूराम गोडसे नामकः युवकः प्रार्थनासभायां गच्छन्तं गान्धिजीवं गुलिकया हतवान् येन सः तत्कालं राम राम इति कथयन् पाञ्चभौतिक शरीरं परित्यज्य चरमां शान्तिं लेभे।

इदमेव महात्मनः गान्धिमहोदयस्य संक्षिप्ततमं जीवनवृत्तं वर्तते। अफ्रीकागमनम् आरभ्य मरणपर्यन्तं भारतीयजनानां हिताय भारतस्य स्वतन्त्रतायै च महात्मा यत् यत् अद्भुतं कार्यं कृतवान्

कांग्रेस महासभामें सम्मिलित हो गये। तबसे लेकर देशकी स्वतन्त्रताके लिये प्रधान नेताके रूपमें महात्मागान्धीजीने जो-जो काम किये, जो-जो कष्ट सहे और जिस प्रकार सत्य तथा अहिंसाके प्रयोगसे विदेशी शासनको समाप्तकर देशको पूर्णरूपसे स्वतन्त्र किया उसकी कहानी बहुत विस्तृत है और देशके सब लोग वह सब जानते ही हैं।

यह बात भी सब लोगोंको विदित है कि स्वतन्त्रता प्राप्तिके समय देशका हिन्दुस्तान और पाकिस्तानके रूपमें विभाजन हो गया। इस कारण उस समय देशके अनेक स्थानोंमें हिन्दु एवं मुसलमानोंमें भयानक उपद्रव, संघर्ष एवं हत्यायें हुईं। परन्तु वैसे अशान्तिमय समयमें भी गान्धीजीने शान्तिकी स्थापनाके लिये बहुत प्रयास किया तथा मुसलमानोंकी भलाई ही करना चाहते थे। इसी कारण कुपित होकर एक नाथूराम गोडसे नामक युवकने प्रार्थना सभामें जाते हुए गान्धीजीको गोलीसे मार दिया और उन्होंने राम राम कहते हुए तत्काल पांचभौतिक शरीर छोड़कर चरम शान्ति प्राप्त की।

यही महामानव महात्मा गान्धीजीका अति संक्षिप्त जीवनवृत्त है। अफ्रीका जानेसे लेकर मरणपर्यन्त भारतीय जनोंके हितके लिये तथा भारतकी स्वतन्त्रताके लिये महात्माजीने जो-जो अद्भुत कार्य

यथा च सफलतां प्राप्तवान् तत् सर्वं वर्णनाऽतीतं वर्तते तथा तस्य कापि तुलना नास्ति।

स्वतन्त्रतायाः अतिरिक्तं देशस्य व्यापकहिताय अन्यानि अपि अनेकानि कार्याणि गान्धीजीवः कृतवान्। शिक्षायाः प्रचारः, ग्रामीणानाम् उद्योगानां प्रवर्तनम्, चर्खाद्वारा वस्त्रसमस्यायाः समाधानम्, हरिजनानाम् उद्धारः, विविधकुरीतीनां निवारणम्, स्वदेशि-वस्तूनां व्यवहारः, राष्ट्रभाषायाः उन्नतिः, अस्पृश्यतायाः उन्मूलनम्, भारतीयसभ्यतायाः समर्थनं, सात्त्विकजीवनस्य उपदेशः, मानवेषु च जाति-धर्म-भेदं परित्यज्य सौहार्दस्य स्थापनञ्चेत्यादि तस्य कार्याणि भारतस्य इतिहासे चिरं स्मरणीयानि भविष्यन्ति।

गान्धिजीवस्य जीवनविषये संसारस्य तथा भारतस्यापि सर्वासु भाषासु परःसहस्राणि पुस्तकानि प्रकाशितानि सन्ति। तानि यदि बालकाः पठेयुः तर्हि तेषां महान् लाभः भविष्यति तथा तेषां जीवने त्यागस्य, देशप्रेम्णः सदाचारस्य, आस्तिकतायाः तथा सर्वेषां हितसाधनस्य भावनायाः अवश्यं विकासः भविष्यति येन ते समाजे सर्वत्र सम्मानं प्राप्तुं शक्ष्यन्ति।



किये और जिस प्रकार उन्होंने सफलता प्राप्त की वह सब वर्णनातीत है और उसकी कोई तुलना नहीं है।

स्वतन्त्रताके अतिरिक्त देशके व्यापक हितके लिये और भी अनेक कार्य गान्धीजीने किये। शिक्षाका प्रचार, ग्रामीण उद्योगोंका प्रवर्तन, चर्खा द्वारा वस्त्रकी समस्याका समाधान, हरिजनोंका उद्धार, विविध कुरीतियोंका निवारण, स्वदेशी वस्तुओंका व्यवहार, राष्ट्रभाषाकी उन्नति, अस्पृश्यताका उन्मूलन, भारतीय सभ्यताका समर्थन, सात्त्विक जीवनका उपदेश तथा जाति और धर्मका भेदभाव छोड़कर समस्त मानवोंमें सौहार्दकी स्थापना आदि उनके कार्य भारतके इतिहासमें चिरकाल तक स्मरणीय रहेगें।

गान्धीजीके जीवनके विषयमें संसारकी तथा भारतकी भी समस्त भाषाओंमें हजारों-हजार पुस्तकें प्रकाशित हैं। यदि उन्हें बालक पढ़ें तो उनका बड़ा लाभ होगा तथा उनके जीवनमें त्याग, देशप्रेम, सदाचार, आस्तिकता तथा सबके हितसाधनकी भावनाका अवश्य विकास होगा जिससे वे समाजमें सब जगह सम्मान पा सकेंगे।



भारतके कुछ अन्य आदर्श महापुरुष एवं देवियाँ जिनकी कथाओंका अध्ययन करना चाहिये

ज्ञानी बालक–

- नचिकेता
- सत्यकाम
- श्वेतकेतु
- शुकदेव

वीर बालक–

- लव, कुश
- भरत
- अभिमन्यु
- एकलव्य
- कुणाल
- स्कन्द गुप्त

वीर योद्धा–

- भीष्म पितामह
- द्रोणाचार्य
- अर्जुन
- कर्ण
- हनुमान

परोपकारी–

- शिवि
- दधीचि
- रन्तिदेव
- मयूर ध्वज

ऋषि-महर्षि–

- पराशर
- वसिष्ठ
- विश्वामित्र
- नारद
- मार्कण्डेय

राजर्षि–

- जनक
- युधिष्ठिर
- हरिश्चन्द्र
- भगीरथ
- अम्बरीष
- दिलीप
- परीक्षित

देवियाँ–

- सीता
- सावित्री
- दमयन्ती
- द्रौपदी
- कुन्ती
- विदुला
- मदालसा
- शवरी
- मैत्रेयी
- शकुन्तला

सम्राट्–

- अशोक
- चन्द्रगुप्त
- समुद्रगुप्त
- विक्रमादित्य
- हर्षवर्द्धन

विद्वान्–

- पाणिनि
- चाणक्य
- आर्यभट्ट
- कुमारिल भट्ट
- वाराह मिहिर
- चरक
- सुश्रुत
- भरत

धर्माचार्य–

- महावीर
- चैतन्य
- रामानुज
- रामानन्द
- कबीर
- गुरुनानक
- गुरुगोविन्द सिंह
- दयानन्द
- रामकृष्ण परमहंस
- विवेकानन्द
- अरविन्द

वीराङ्गनायें–

- लक्ष्मीबाई
- अहिल्याबाई
- इन्दिरा गान्धी

राष्ट्र-नेता–

- लोकमान्य तिलक
- जवाहरलाल नेहरू
- लालबहादुर शास्त्री
- वीर सावरकर
- अबुल गफ्फार खाँ
- सुभाष चन्द्र बोस



प्रार्थनागीतम्

(१)

(तर्ज—तेरे पूजन को ऐ मोहन पुजारी बनके आया हूँ)

दयामय ! देव ! दीनेषु दयादृष्टिः सदा देया ।
प्रतिज्ञा दीनरक्षाया दयालो ! जातु नो हेया ॥

मनुष्या मानवा भूत्वा इदानीं दानवा जाताः ।
तदेषा मूढता देशात् द्रुतं दूरे त्वया नेया ॥दयामय

त्वदुपदेशामृतं त्यक्त्वा, विपन्नो हन्त लोकोऽयम् ।
तदुद्धराय एतेषां प्रभो गीता पुनर्गेया ॥दयामय

किमधिकं ब्रूमहे भगवन् ! निवेदनमेतदेवैकम् ।
यदेते बालकाः स्वीयाः प्रभो ! नो विस्मृतिं नेयाः ॥दयामय

(२)

(तर्ज—मा शारदे कहाँ तूँ वीणा बजा रही हो)

भगवन् । त्वदीयभक्तिं न कदापि विस्मरेयम् ।
निज-देश-जाति—सेवाऽऽसक्तः सदा भवेयम् ॥

जायेत जातु नो मे पर-पीडनाऽभिलाषः ।
दीने सहायहीने सततं प्रभो द्रवेयम् ॥ भगवन्····

प्रीतिः सदा स्वदेशे रतिरस्तु नैजवेषे ।
गुरुपादयोर्निदेशे स्वमनः प्रवर्तयेयम् ॥ भगवन्····

कुरुते सदा विनीतो विनयं कृपैकसिन्धो ।
गुरु-मातृ-पितृसेवा-करणे वयो नयेयम् ॥ भगवन्····

मुद्रक—आनन्द कानन प्रेस, वाराणसी । फोन : ३२२३३७